हिरन की आँखें

[यथार्थवादी रोमान्स]

हिरन की आँखें

चार विराम

फ़रवरी का महीना। पिछले तीन दिन से बरफ़ पड़ती रही। आज आसमान साफ़ था। बरफ़, मज़बूत चट्टान की तरह, कुहरे की वजह से जमती जा रही थी—चारों ओर सफ़ेद-ही-सफ़ेद, गाँव के मकान भी उसके बीच चमक उठते थे। बाहर ठंडी हवा चल रही थी।

मेले का दिन था। गाँव से पाँच मील पर एक मैदान है। वहीं सालाना मेला लगता है। आस-पास के गाँवों के लोग वहाँ आया करते हैं। खूब भीड़ जमा होती है। छोटा बाज़ार भी चालू किया जाता

है। हर तरह का आदमी देख पड़ता है। पास ही भूटानियों के कुछ कुनबे एक गाँव में बस गये हैं। उनके पास दूर देश से लाई चीज़ें भी मिल जाती हैं।

भूटानी औरतें गन्दी चाहे हों किन्तु सुन्दर बहुत होती हैं। दूकानदारी करने का उनका ढंग भी अनोखा होता है। मनाव-बुझाव के साथ मुस्करा-मोहकर शासन करना वह जानती हैं। मोतियों की माला वह दिखलाएँगी, ऊन के बने कपड़े, नीलगाय का चँवर, कस्तूरी, हींग, शिलाजीत, कैंची, छुरी, बटन, कमरबन्द, सेफ़्टीपिन—और भी ज़रूरत की चीज़ें उनके पास होती हैं। इसके बाद चाय भी मिलेगी। उनकी चाय बहुत गरम होती है। वे उसे अजीब ढंग से बनाती हैं। उसी में नीलगाय का घी भी मिला देंगी, और भी न जाने क्या-क्या जड़ी बूटियाँ डालती हैं। साधारण आदमी उसे हजम नहीं कर सकता। यह उसके बस के बाहर की बात है।

बहुत ठंठा देश है प्रत्येक घर में शराब भी बनाई जा सकती है। उसके लिए क़ानूनी अधिकार प्राप्त है। कई रंगीन पहाड़ी फूल सड़ाए जाते हैं। कोदों भी इस काम में आता है, और भी तरीके होते हैं। जमीन में गाड़कर पीपे में वह सब सड़ा दिया जाता है। हर एक परिवार, अपना-अपना, अलग-अलग, तहख़ाना रखता है। आगन्तुक का इसी से सत्कार होता है। बिना इसके मेहमानी अधूरी रहती है।

वह औरतें बहुत लुभावनी होती हैं। उनकी बातों में एक मिठास और चेहरे पर लावण्य होता है। उनमें कहीं भी बनावटी बनाव-ठनाव नहीं होता। उनके भी प्रेमी होते हैं, वे भी प्रेम करती हैं। जान जोखिम में डालनेवाले खेल खेलने में भी वे नहीं चूकतीं। जिन्दगी की वे कोई क़ीमत नहीं समझती, कभी-कभी तो वे अपनी छोटी छुरी से अपने

धोकेआज प्रेमी का खून तक कर डालती हैं। रोज़ ही ऐसी बातें सुनने में आती हैं—जैसे उनका कोई अन्त नहीं। दुनिया के साथ वे मिटेंगी या परलोकवाले ज्ञान से उनका सम्बन्ध है, इसका निर्णय कोई नहीं कर पाता।

शान्ति बाबू ने यह सारी बातें मुझसे कही थी। उसके गाँव एका-एक आना पड़ा। उसका बुलावा और तकाज़ा था। यह सब देखना भी भला कौन नहीं चाहेगा। उसके मेहमान की हैसियत से मैं वहाँ पड़ा हुआ था। वह बोला। "चलोगे नहीं?"

"मेले में?"

"हाँ, देखने लायक होता है। साँझ को लौट आवेंगे।"

बिना किसी आनाकानी के हम दोनों रवाना हो गये। राह में एक गाँव पड़ता था। शान्ति बोला, "भूख तो नहीं लग रही है।"

"है तो ज़रूर।"

"तब चलो, नीचे गाँव में कुछ नाश्ता करेंगे।"

"वहाँ दूकान है?"

"एक परिवार से मेरा परिचय है। उनकी लड़की को देखकर तुम भी....... "

"फिर शरारत।"

"उर्वशी से सुन्दर है।"

मैं उसके साथ-साथ नीचे पगडंडी पर उतरने लगा। पहाड़ी रास्ता, बार-बार डर लगता था कि कहीं फ़िसल न जावें। थोड़ा ही फ़ासला था, सही सलामत पहुँच गये। एक मकान के दरवाज़े पर शान्ति ने पुकारा—"आनन्दी।"

एक लड़की बाहर निकली। गजब की सुन्दर थी। मैं देखता ही

रह गया। वही भूटानी लड़की। वैसे तो सौन्दर्य की स्मृतिमात्र ही भविष्य और वर्तमान से परिचित करा देती है।"

"कुछ खाने को मिलेगा?"

"सब तो मेले में गये हैं।"

"तू नहीं गई?"

"तुम्हारा इन्तजार करती रही।"

'तेरी माँ घर में है?"

"हाँ।"

"खाने को जो हो, ले आ।"

सिर्फ भूना मांस, उसमें तेल चुपड़ा हुआ, ऊपर से नमक की बुरकी, साथ में बढ़िया शराब भी। शान्ति बोला, "खाओ।" एक छोटे गिलास में उसने थोड़ी शराब निकाली और पी ली। फिर मुझे भी गिलास दिया। बहुत सुन्दर मदिरा थी। स्वाद तीखा नहीं था। तब शान्ति बोला, "और तू आनन्दी?"

"हमने अभी पी है।" मुँह खोल, साँस फूँककर वह जैसे साबित करना चाहती थी कि उसने पी है।

"थोड़ी और!" शान्ति ने अनुरोध किया। आनन्दी ने पी ली। मना नहीं किया।

बड़ी देर बाद हम उठे। बहुत पी ली थी। मैंने शान्ति को समझाया, "अब मेले का प्रोग्राम व्यर्थ है।"

"लेकिन मुझे चीजें खरीदनी हैं।" आनन्दी ने कहा।

हम चल पड़े। रास्ते में एक जंगल पड़ता था। वह बहुत घना था। आनन्दी अपने होश में नहीं थी। कई बार वह फिसलते-फिसलते, गिरने से बची। पकड़कर सावधानी से उसे ले जाना पड़ रहा था।

एक जगह आखिर वह गिर ही पड़ी। नशा चढ़ा था। बेहोश हो गई। चारों ओर सन्नाटा छाया था। शान्ति बोला, "यह अच्छी लड़की है। मेरे पीछे बदनाम है।"

"पीती बेहद है।" मैंने कहा।

"सभी इन लोगों में पीते हैं।"

आनन्दी की बहादुरी के क़िस्से वह फिर सुनाने लगा—'किस तरह वह आधी-आधी रात तीन-तीन मील चलकर उसके पास आती थी। वह बड़ी निडर है। यह छुरी उसकी रक्षा करती है। एक तावीज़ भी जादू का बँधा हुआ है' शान्ती भी बहुत पीकर, न जाने क्या-क्या कहता जाता था। कुछ होश में आने पर वह फिर बोला, "सड़क पर इस तरह पड़े रहना ठीक नहीं। इसे उठाकर ले चलें।"

आनन्दी बच्ची होती तो उसे ले जाते। वह थी जवान, भारी लड़की। शान्ति व्यवस्था सुझाता कहने लगा, "मैं सिर कन्धे पर लटकाये लेता हूँ। टाँगें तू कन्धों पर डाल ले। यहाँ मेलेवाले देखेंगे, यह ठीक बात नहीं।" कह कर वह उसे उठाने लगा। मैंने भी उसका हुक्म मान लिया, आनन्दी एक रंगीन घाँघरा पहने थी। बार बार वह चलने में हिलने लगता। बड़ा अटपटा लगता। उलझन में उसने डाल दिया। सारे शरीर का बोझ जैसे वहीं आ जमा था। दो क़दम चलता, झुँझलाकर रह जाता—अपने से, आनन्दी से। उस आनन्दी को इस तरह बेहोश होना क्या ज़रूरी था? काफ़ी उलझन के बाद मैं बोला, "शान्ती!"

"थक गये?"

"नहीं।"

"क्या है फिर?"

"मैं सिर उठाकर ले चलूँगा।"

"इधर, होशियारी से!" शान्ति ने ऊपर पहाड़ की ओर वाली पगडंडी पकड़ ली थी। घना और काला-काला जंगल देख पड़ता था। चुपचाप दोनो आगे बढ़ रहे थे। मेरी आँखों की दृष्टि एक बिन्दु के भीतर पैठ रही थी। मैं चुप नहीं रह सका। ज़ोर से बोला, "शान्ति, तुम पीछे आ जाओ।"

"बस, थोड़ी दूर और चलना है।" सावधानी से वह बोला।

"हम जा कहाँ रहे हैं?" वह मेले का रास्ता नहीं था।

"पहाड़ की चोटी की ओर।"

"और मेला?"

"इस जिन्दा लाश को लेकर नहीं चल सकते।"

"तब?"

"जब तक इसे होश नहीं आता, यहीं रहना पड़ेगा। और कोई चारा नहीं।"

शान्ति के इस कुतूहलपूर्ण व्यवहार से मैं आश्चर्य में पड़ गया। लड़कियों को अक्सर मैंने दूर से देखा था। कभी-कभी उनकी समीपता भी प्राप्त की थी। कई बार उनके नग्न शरीरों को देखने का भी मौका मिला था। तब कभी भी भीतर इतनी कुड़कुड़ाहट नहीं हुई थी। उसका बदन कितना सुन्दर था। उसमें ठंडे देश की पूरी स्वस्थता और जीवन था। उसकी उँगलियों से आँच भीतर कुलबुलाहट होने लगी। वह बेहोश थी। उसके शरीर की इस उपयोगिता पर आश्चर्य हो आया! वह क्या होगी, इतनी शराब क्यों पी डाली, कितनी दूर उसे लादकर ले जाना होगा! काफ़ी ठंड पड़ रही थी। किन्तु नशा अभी चढ़ा था। उसकी गरमी शरीर पर फैल गई थी। वह अभी कम नहीं हो सकती।

माथे पर एक भीना-भीना प्रभाव पड़ने लगा। वहाँ जैसे कि दिमाग़ बहुत सोच रहा हो। सारा शरीर बार बार सिहर उठता था—जैसे कि बिजली दौड़ रही हो। बस बरफ़ चारों ओर ओर कुछ नहीं – ठिठर से ख़ाली पेड़ खड़े थे। उनमें कहीं भी पत्ते नहीं थे। सुना था, कस्तूरी के हिरन यहीं रहते हैं। मोटे मोटे भोजपत्र के पेड़ भी खड़े थे। शान्ति बढ़ रहा था। जंगल के बीच कहाँ जाना होगा, कुछ भी तो नहीं देख पड़ता था। नीचे सफेद बर्फ़ की फ़र्श थी, आस-पास चारों ओर काले-काले पेड़। धूप निकली थी, नीला आसमान था—कभी-कभी दूर ढोलों व किसी और पहाड़ी बाजे की अवाज़ कानों में पड़ती थी। बीच में दोनों उँगलियों को मुँह में डाल कुछ लोग सीटी भी बजाते थे। वह आवाज़ जंगल को चीरती कानों में पड़ती थी। एक मील से ऊपर पहाड़ की चोटी की ओर बढ़ गये। जंगल अब खतम होता जा रहा था, बर्फ़ भी पिघल चली थी। पाँव फिसलते-फिसलते रह जाते थे। शान्ति ठहर गया। बोला, "बस, अब यहीं लिटा दो।"

आख़िरी नज़र से मेरी आँखों ने उस बिन्दु को देखा। वह ज़मीन पर रख दी गई।

"अपना ओवरकोट उतारना।" शान्ति बोला।

मैंने आनाकानी नहीं की, कोट उतार लिया।

"इसे बिछा दो।" चुपचाप मैंने बिछा दिया। शान्ति ने फिर कहा "इसे उस पर लिटा दो बहुत पी डाली है। बड़ी तेज़ थी। मुझे क्या मालूम था, इतना नशा चढ़ेगा। यह तो एकदम गिर पड़ी। अभी होश आता नज़र नहीं पड़ता।" कहते-कहते उसने आनन्दी के गालों पर हाथ रखा। फिर गरम वास्कट खोली। कुरते के बटनों को खोल, भीतर छाती पर हाथ रखते कहा, 'पसीना हो रहा है। बहुत गरमी है।"

"तब क्या होगा ?" शान्ति को मैं देखता रह गया।

"कुछ नहीं।" कह उसने उसकी वास्कट उतार दी। फिर कमीज़ भी उतारने लगा।

"हैं—हैं ?" मैं बोला, "निमोनिया हो जावेगा।"

"तब तक होश नहीं आने का।"

वह अब कमीज उतार चुका था। सूर्य की किरणें उसके गोरे शरीर पर पड़ने लगीं।

"यह क्या ?" मैं अचरज में बोला।

"कुछ नहीं, लाचारी है। बड़ी तेज निकली। ठंडी हवा लगने से यह होश में ज़रूर आ जावेगी।"

आनन्दी ओवरकोट के ऊपर पड़ी रही। वह अभी बेहोश थी। उसकी आँखें मुँदी हुई थीं। शान्ति ने चुपचाप अपने ओवरकोट की जेब से एक बोतल निकाली। कुछ पीकर बोला, "मैं मेले जा रहा हूँ।"

"क्या ?"

"यहाँ डर की कौन बात है ? वहाँ एक दूसरी लड़की से वायदा किया है। नहीं तो वह गुस्सा होगी। अभी एक घन्टे में आया। नशा उतरे तो थोड़ी और पी लेना। यह होश में आनेको हो, थोड़ी इसे भी पिला देना। मेरा जाना जरूरी है। अपने वायदे मैंने आज तक कभी नहीं तोड़े। इसी लिए इतनी सारी सुन्दर लड़कियों का विश्वास-पात्र बना हूँ।"

"और यह आनन्दी ?"

"क्यों, क्या है ?"

"यह तो.... !"

"बेहोश है। खा तो जावेगी नहीं! अच्छे आदमी हो तब घाघरा पल्टन में नाम लिखवा लेना! अच्छा तो........"

दूर तक आश्चर्य से मैं शान्ति को जाता हुआ देखता रह गया। वह आँखों से ओझल हो गया था। एक बार मेरा सारा बदन काँप उठा—मैंने यह बोतल देखी। फिर आनन्दी की ओर नज़र डाली, बार-बार उसकी छातियाँ उठती थी, फिर ख़ुद ही दब जाती थीं। नारी के इस नग्न रूप के लिए श्रद्धा हट गई। शराब की वह बोतल मुँह से लगा ली। पाँव लड़खड़ाए, नशे के जोर से गिर पड़ा। कुछ देर में आँखें खुलीं। पाया कि आनन्दी पास ही पड़ी थी। वह अभी भी सोई ही थी।

आसमान में बादल घिर रहे थे। काफ़ी ठंडी हवा चलने लगी थी। आनन्दी कुछ हिली, उसने आँखें खोलीं। एक बार अपने को देखा, फिर मुझे भी घूरकर देखा, चारों ओर न जाने क्या-क्या देखती रही। अब उठी, एक-एक कपड़े पहन लिये। अपनी जेब से छुरी निकाली। मेरे आगे तनकर खड़ी हो गई। पूछा, "वे कहाँ हैं?"

"मेले में।"

"तुम कौन हो—उनके दोस्त न?"

"हाँ।"

उसने बोतल में बाकी बची सब शराब पी डाली। पास ग़ुस्से में खड़ी हो गई। एक धक्का देकर मुझे चित्त लिटा दिया। अपराधी की तरह मैं चुप रहा। छुरी की नोक मेरी छाती पर रखकर बोली, "जो पूछ रही हूं, सच कहना।"

"कहूंगा।" मैं भीतर बहुत डरकर बोला।

"तुमको वे मेरी हिफ़ाज़त करने के लिए छोड़ गये थे न?"

"हाँ।"

"तब तुमने मेरे शरीर को छूकर मेरा अपमान क्यों किया ?"

मैंने राह के सारे ज़िक्र के साथ, अपनी सारी कमज़ोरी ज़ाहिर कर दी। "ओह!" कह उसने छुरी दूर फेंक दी। मैंने देखा कि वह छुरी बर्फ़ में खड़ी है। वह गुस्से में बोलती रही, "तुम सब पुरुष शैतान हो। तुम्हारा यही हाल है। छुरी से न मारकर तेरा गला घोट दूँगी। यही ठीक होगा। तुम्हारी सारी जाति का मैं नाश कर दूँगी।"

मैं चुपचाप रहा। कोई भी जवाब मेरे पास नहीं था। हठात् वह खिलखिलकर हँस पड़ी। कहा, "मरने से पहले किसी की याद करोगे ?"

"किसकी ?"

"तब तुम्हारी किसी लड़की से दोस्ती नहीं है ?"

"नहीं।"

"तो तुम दया के पात्र हो। तुम पुरुष नहीं, तुम्हारी हत्या करनी बेकार होगी। फिर भी तुमसे कुछ न कुछ बदला जरूर लूँगी। खाली नहीं छोड़ सकती। तुमने मेरी इज्जत पर हमला किया है।" और वह मुझे चूमने लगी।, चूमती रही। उसके ओंठ बहुत सुन्दर लग रहे थे। मैं सँभल नहीं सका। बोला, "मुझे छोड़ दो।"

"छोड़ दूँ ?" वह ठहाका मारकर हँस पड़ी।

उसकी वह हँसी ज़रा भी समझ में नहीं आई। वह और ज़ोर से चूमती जा रही थी। मैं असमंजस में पड़ गया। अपने में कुछ ठीक-ठीक सोचा न गया। वह भी अपना सामर्थ्य खोती जा रही थी। कहीं भी अपने में बाक़ी न रह सकी।

आखिर वह बोली, "तुमने मुझे प्यार भी किया है ?"

"हाँ ।"

"सुबह तुम मुझे देखकर डर क्यों गये थे ?"

"मैं !

"हाँ, मैंने यह भाँपा था ।"

मैंने जवाब नहीं दिया । वह मुझे उठाती हुई बोली, "चलो, मेले चलें ।"

'मेले ?"

"अभी काफ़ी वक्त है ।"

"और शान्ति ?"

"वहीं मिलेंगे । चलो, मुझे बहुत-सी चीजें लानी हैं । फिर तो तीसरे महीने मिलेंगी ।"

मैं क्या कह सकता था । साथ हो लिया । हम लोग मेले पहुँच गये । वहां शान्ति भी मिल गया । आनन्दी से बोला, "अब नशा उतर गया ?"

"तुम दवा छोड़ आये थे न ! मेरी ओर देख कर वह मुस्कराई । मैं स्तब्ध खड़ा रह गया ।

लेकिन वहाँ कई-कई लड़कियाँ थीं । शान्ति ने सबको दिखलाया । आनन्दी साथ थी, साथ रही । जो पसन्द आता, वह खरीद लेती । और लड़कियाँ आनन्दी की तरह तेज नहीं मिलीं ।

मेले से लौट आये । आकर नींद आ गई । आधी रात मैंने शांति को जगाते हुए कहा, "तुमने आवाज सुनी ?"

"क्या ?"

तभी एक बार फिर सीटी की तेज़ आवाज़ हुई। सुनकर शान्ति बोला, "आनन्दी आई है!"

"आनन्दी!" मैं उसके चेहरे की ओर देखता रह गया।

शान्ति नीचे पहुँचा। सच ही आनन्दी उतनी दूर से आधी रात को पैदल आई थी। कहीं भी उसे डर नहीं लगा।

"तुमसे ? कुछ बातें करने आई है।"

मुझसे ?" मै दंग रह गया।

और आनन्दी सारी रात मुझसे लगी सोई रही। सुबह जाने से पहले सच्चे मोतियो की माला देते हुए बोली, "अब घर जाकर शादी कर लेना। बेकार उम्र खराब क्यों कर रहे हो। यह माला उसे दे देना। अब मैं तुमसे कभी नहीं मिलूँगी।"

मैं चुप रहा।

कुछ दिन मैं वहाँ और रहा। एक दिन शान्ति घबराया हुआ आकर बोला, "तुमने नहीं सुना ?"

"क्या ?"

"आनन्दी ने खुदकशी कर ली है"

"आनन्दी ने ?"

"मैं यह जानता था।"

"तुम जानते थे तो.........?"

"मैंने उसे काफी समझाया, धीरज दिया, फिर भी वह अपने मन को समझा नहीं सकी। वह तुमको प्यार करने लगी थी।"

"मुझे ?"

"यही वह रोज़ कहती रही ?"

"लेकिन मुझसे कभी नहीं कहा ?"

"तुमको उसने माला दी थी न ?"

"हाँ।"

"वह चाहती थी कि वह माला तुम खुद ही उसके गले में डालकर स्वीकार करोगे कि वह तुम्हारी है।"

"लेकिन शान्ति ......?"

"कसूर तुम्हारा नहीं है। यह तो यहाँ रोज़ ही लगा रहता है। और जानते हो, उसकी आखिरी ख्वाहिश क्या थी ?"

"आनन्दी की ?"

"वह उसी जगह गाड़ी जाय, जहाँ ओवरकोट बिछाया गया था।"

"तब चलो।"

"तुम चलोगे—दुनिया का ख्याल कुछ नहीं है ?"

"मेरी दुनिया क्या है ?"

गाड़ने से पहले आनन्दी को मैंने खूब-खूब देखा था। नग्न ही वह वहाँ गाड़ी गई थी। उसके ठंडे ओठों को चूम कर मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जीवन में किसी और से प्रेम नहीं करूँगा।

किन्तु रोज़ ही लड़कियों से कहता हूँ, "मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।" उनके साथ सहूलियत से रहता भी हूँ। कहीं कोई एतराज और हिचक मालूम नहीं होती। वहीं मैं आनन्दी को खोकर एक बार फिर अपने पास पा लेता हूँ। यह भ्रम नहीं है।



रैनबसेरा

दोनों ने विवाह किया था। सुमित्रा एक पढ़ी लिखी विधवा थी, और सुमेश बाबू फ़िलासफी के प्रोफेसर। सुमित्रा को समाज में चलने के लिए पति की जरूरत थी और सुमेश बाबू कुरूप होते हुए भी एक सुन्दर बीबी चाहते थे। दोनों के बीच एक आपसी समझौता आर्य-समाज-मन्दिर में हुआ। पति-पत्नी की तरह दोनों फिर रहने लगे। समाज के बीच एक अजीब खलबली मची। सुमित्रा की सहेलियों ने खत भेजे कि उसने यह क्या 'भैंसा' पालने की सोची। शहर के नवयुवकों का

एक दल, सुमित्रा के लिए आहें भरता-भरता जो जी रहा था—उसमें से कई का हार्टफेल होते-होते बचा। शहर और उसके चारों ओर जहाँ तक सुमित्रा के अपने-परायों का जाल था, सब उसके इस व्यवहार से अँचरज में रह गये। सुमित्रा से कोई कुछ नहीं बोला। उस वक्त सुमित्रा की उम्र उन्नीस साल की थी और उसके पति की अड़तीस। सुमित्रा के पहले पति से एक बच्चा हुआ था। उसी के सहारे उसने वैधव्य काट लेने की सोची थी, किन्तु बच्चा—उसे माँ का सदमा पहुँचा मर गया। इसके बाद केवल 'सेन्टिमेंटस्' के सहारे घिसटना आकाश-कुसुम हो गया। वह बहुत विचलित हो उठी। गांधी जी के मतानुसार अखबार में उसने विज्ञापन दिया और एक दिन अनुभवी दुलहिन बन अपने नये अजायब घर में उसने रहना भी स्वीकार कर लिया। पति को भी पहले, एक बड़ी उम्र तक, विवाह की फिक्र नहीं रही थी। 'सेक्स' की भूख, पुस्तकों व मानसिक प्रतिक्रियाओं के साथ, कुछ फीकी पड़ गई थी। एक दिन उनको महसूस हुआ कि अब एक साथी की जरूरत है। इसी लिए वे अब गृहस्थ बन गये थे।

सुमित्रा ने बचपन से स्वतन्त्र रहना सीखा था। जब वह मैट्रिक में पढ़ती थी कालेज के एक लड़के के साथ काफी दिनों तक उसका प्रेम चला था। तब वह ना समझ थी। होस्टल की 'माताजी' ने, उसकी व अपने 'होस्टल' की प्रतिष्ठा के लिए, एक लेडी डाक्टर से प्रेम के उस 'फल' को आगे नहीं बढ़ने दिया था। इस ठोकर से वह सतर्क हो उठी और समझदार लड़की की तरह हर एक बात की जाँच-पड़ताल कर सब बातें ठीक और खूबी से परख लेना सीख गई थी। वैधव्य जीवन में जो ज़रा-सा डर समाज का था, वह भी अब नहीं लगा। उसने अनुभव किया कि पहले वह जितनी अबला कही जाती थी, उतनी ही अब

सबला है। फिर अपने सौन्दर्य और यौवन-धन की सामर्थ्य की जानकारी भी उसे पूरी थी। निश्चित होकर, गृहस्थी में प्रवेश करते समय, वह खिल-खिलाकर हँस पड़ी थी। साथ ही उसे विश्वास था कि अब तक वह जो कुछ चाहती रही है, उसके आदान प्रदान में कहीं रुकावट नहीं होगी—वह उस वीरान घर की देवी है, लक्ष्मी है, सब कुछ है।

उन दिनों शहर में कांग्रेस का जोर था। जमाना देख उसके भीतर पैठ गई। सभा-समाज व छोटे-मोटे जलसों में प्रवेश करने के बाद उसने महसूस किया, अपने सौंदर्य के अन्दर के साथ-साथ उसका अपना व्यक्तित्व भी बढ़ता जा रहा है। वह खुद जितनी है, आदमी उससे भी अधिक उसे मान लेते हैं। उसकी एक दृष्टि, एक चितवन, एक मुस्कान जैसे उस शहर को स्वराज्य दिलाने के लिए काफ़ी है। स्कूली-कालेजी जलसों में जाना, टाउनहाल, छोटे मोटे झगड़ों का निपटारा—यह सब काम जैसे कि शहर में उसके बिना नहीं हो सकते थे। कई सालों से स्थापित कांग्रेस-कमेटी भी जैसे उसी के इन्तजार में अब तक रुकी रही थी उसका स्पर्श पाकर जैसे अब वह जी उठी।

किन्तु जीवन सहज नहीं। कठोरता और जीवन के उतार-चढ़ाव से किसी को छुटकारा नहीं मिलता। आख़िर सुमित्रा को भी छः महीने की जेल की सजा एक व्याख्यान देने पर हुई।. जेल पहुँचने पर उसका सारा उत्साह फीका पड़ गया। पिछले कुछ महीनों पति-पत्नी का रिश्ता ऐसा रहा था कि एक को दूसरे की अधिक जरूरत महसूस नहीं होती थी। अब वह समझी कि उसका वह सारा उत्साह और खुशी, उसके पारिवारिक जीवनको टेक देने के लिए जैसे आया था। पति में उसे यदि पूरा जीवन मिल जाता, वह यह सब नहीं करती। 'होमरूल' को पाने के लिए उसे आन्दोलन में जुट जाना पड़ा। सूना जीवन भर उठा।

जेल की एकान्त कोठरी के भीतर वह परेशान हो उठती। कभी-कभी उसे अपने पति और उसके बच्चे का खयाल भी हो आता। उसके सारे शरीर के भीतर एक अजीब कुतूहल फैल रहा था। कभी-कभी वह अत्यधिक भावुक हो उठती। दाँतों से ओंठ इतने ज़ोर से काटती कि ख़ून निकल आता। भारी पीड़ा होने पर मन की आग कुछ फ़ीकी पड़ जाती। कभी-कभी अपने दाँतों के निशान अपने हाथ पर गहरे बना, उनको सहलाया करती। कई बार अपने गालों पर हल्की-हल्की चपत मारनी शुरू करती। कुछ देर बाद गालों में सन-सन होने लगती और अन्त में थककर, पलंग पर लेट जाती। सारे देश की व्यथा जैसे उस शरीर पर फैल चलती। एक मरोड़-सी खाकर, असहाय हो उठती।

पति की ज़िम्मेदारी का फिर उसे खयाल आता उसकी दर्शन-शास्त्र की मोटी मोटी किताबें, दुनिया भर के अखबार, उसके विद्यार्थियों का समाज। तब भी सुमित्रा जो कहती, वह उसकी सारी बातें मान लेता। कभी कुछ मनाही नहीं थी। सुमित्रा ने ही पति के आगे अपना दिल साफ़-साफ़ नहीं खोला था। वह अपने भीतर लगे बड़े ताले की, जिस पर उसके स्कूलवाला दोस्त व पति मुहर लगा गये थे, खुद तोड़ने के पक्ष में नहीं थी। उसे मालूम था कि पुरुष खुशामद करता है, फुसलाता है वही खेल प्रोफ़ेसर के साथ भी रच, वह अपना दिल बहलाना चाहती थी। प्रोफ़ेसर ने उसे पत्नी-सा प्यार किया, वही जगह उसे दी, उसके लिए सब बातें मंजूर कीं, लेकिन जीवन के सारे अनुभवों से वह परिचित नहीं था, जब कि सुमित्रा वहाँ तैर आई थी। प्रोफ़ेसर सुमित्रा को खूब प्यार करता, वैसे ही जैसे कि बच्चा अपने नाजुक खिलौने का खयाल रखता है कि कहीं चटक न जावे। इसके बाद उस

प्यार में एक बुजुर्गाना नसीहत भी होती थी। सुमित्रा के लिए यह एक नई चीज़ थी। कौतुक के साथ वह यह सब सुना करती, खूब-खूब हँसती और सोचती, वह कहेगी कुछ नहीं।

जेल में पहुँचते ही वहाँ की नौकरानी ने पूछा, "आप अकेली रहना पसन्द करेंगी या औरों के साथ?"

"अकेले।"

उसका मन पहिले-पहल अनायास ही घबरा उठा था। एक अजीब अकुलाहट मन में बार-बार न जाने क्यों उठती थी। जब बाहर नौकरानी ने दरवाज़ा बन्द किया, वह इधर-उधर घूमती रही। यह सब क्या है—क्या होगा! बड़ी अजनबी पीड़ा दिल में उठती थी। तब क्या वह पिछले कई महीनों से बीमार थी? वह अस्वस्थता अब ठीक-मालूम पड़ने लगी। ऐसा वह क्या रोग है जो आज तक कोई भी उसे देखकर नहीं जान सका। इस तरह अकेले वह पहले कब रही थी? अब वह क्या करेगी?

अपनी ही आहट से वह बार बार चौंक उठती थी। यह अवसर पहला ही था। उसकी सारी बुद्धि भी तो साथ नहीं दे रही थी। प्रोफ़ेसर 'नेशे' और 'रूसो' की किताबों में मशगूल होगा। कुछ भी हो, उसके साथ रहने से वह भीतरी डर से तो छुटकारा पा जाती थी। उसकी सामाजिक इज्ज़त का लेबल लगाकर ही सुमित्रा इतनी जल्दी समाज में प्रतिष्ठित हो सकी थी। उसके बिना, यह सब इतना सहज और इतना निर्दोष नहीं होता। उसका व्यवहार कुछ विचित्र ज़रूर था, लेकिन इसकी आलोचना उसने कभी नहीं की, न-ही उसके प्रति अपना कोई दबा विद्रोह उसने फैलाया। पतिवाला पूरा दर्जा उसका था। उसमें आनाकानी वाला कोई भी तक़ाज़ा नहीं था। वह यदि पास होता, तब

क्या उसके भीतर सुलगी आग बुझ जाती। पति से सब कुछ पाकर भी उसकी तृष्णा नहीं मिटती थी। पति का व्यवहार और वर्ताव, फिला-सफी की तरह किताबी था। जैसे कि सुमित्रा एक कोरी कापी थी और वह 'डॉक्टरेट' के लिए उस पर 'थीसीस' लिख रहा हो। क्लास में बैठे लड़कों को लेक्चर देने की तरह उनका आपसी रिश्ता भी वैसा ही था। वह जैसे उनका सबसे प्रिय शिष्य हो। उसकी कापी यदि जाँचने को उसे दी जावेगी, तब वह रियायत भी करेगा।

गृहस्ती के सब विशेषाधिकार सुमित्रा को प्राप्त थे। किसी चीज़ की कमी नहीं थी। मन ही मन सुमित्रा हँसती, कुतूहल दबा, चुपचाप सब सुना करती। कपड़ों की खरीदारी, गहनों को पूछना, सिनेमा-थियेटर तो नहीं जाना है, सिर में दर्द तो नहीं है—सभी आवश्यक सवाल वह कर लिया करता था। खुद किसी सवाल को अमल में लाकर वह अपनी राय देने का आदी भी नहीं था। पत्नी सुस्त है, डॉक्टर को दिखलाया जाना चाहिए। मोटर है, डॉक्टर आएगा और दवा लिखकर दे जावेगा। अब दवा पीना न पीना सुमित्रा का निजि मामला है। प्रोफेसर इन बातों में भला क्यों दखल दे।

फिर वही जेलखाना। बड़ी रात तक उसे नींद नहीं आई। गरमी, बदबू—और छः महीने उसे वहीं काटने थे। बहुत कुछ सोचने और दिमाग़ को थकाने के बाद उसे खूब नींद आई। कोई भी सपना उस गहरी नींद में नहीं हुआ।

इस ज़िन्दगी में भी खिल उठने के अवसर उसे मिलते थे। यहाँ प्रोफ़ेसर उसे गुड़िया की तरह सहलाने को नहीं है। वह ख़ुद ही अपनी हिफ़ाज़त करती है, लेकिन आधी-आधी रात तक उसे नींद नहीं आती। लगता कि उसके पेट के भीतर कुछ सरसराहट-सी हो रही है। तब

क्या वह प्रोफ़ेसर के बच्चे की माँ बननेवाली है। उसे अपनी छातियाँ भारी लगने लगती, उनमें एक गुदगुदी शुरू हो जाती। अपने अंग-अंग को छूकर वह समझ लेना चाहती कि वह सचमुच माँ बनने जा रही है। यह फिर हो गया। माँ बनकर क्या वह बच्चे ही पैदा करती रहेगी। किसी घर में चली जावे, यह व्यथा साथ रहेगी। भ्रम फिर घिर जाता। अपने सबल नारी ज्ञान से वह सारी बातों को झूठा ठहरा साबित करती कि वह कुमारीही है—एक कुमारी की तरह ही है। कहीं भी कुछ अन्तर नहीं। वही बचपनवाला उसका शरीर है। तो भी उसे कुमारीत्व की चाह कहाँ थी! वह क्या इसी लिए जीना चाहती है। इसी के लिए तो उसने एक पति का भार नहीं लिया है। वह गृहस्त है, उसका पति प्रोफ़ेसर है, वह नगर की एक सम्भ्रांत महिला है, उसका नाम वहाँ के बच्चे बच्चे की ज़बान पर है—वह सब कुछ है।

पति एक बार मिलने आया था। बड़ी देर तक बातें होतीं रहीं। वही वेदान्त, वही दर्शन-शास्त्र, वही भगवान्, वही भाग्य, वही नारी का कर्तव्य, वही पुरुष की सदियों से प्रचलित पत्नी को शिक्षा, जिसका ठेका मनु से आज तक चल रहा है। वह कुछ भी नहीं बोली। सुनकर कोई खास उत्साह भी उसने नहीं दिखाया। पति अपने ऊपर की सारी कठिनाइयों को सुझा, जैसे उसे बहकाना चाहता था। वह कुछ नहीं करना चाहती। वह वहाँ ठीक थी। उसे और कुछ भी नहीं चाहिए। उसकी जेल की कोठरी कुछ बुरी नहीं। उसमें वह जिस तरह चाहती है, रहती है। किसी का दखल फिलहाल सहने को वह तैयार नहीं।

सोते समय, कई बार, पतिव्रता की तरह, अपने पति का ध्यान कर

वह सो जाना चाहती, किन्तु तभी वह स्कूल का लड़का, जिसके साथ उसने जीवन का पहला 'मधु' बाँटा था, आगे आ जाता। पति को एक ओर ढकेल, वह उसकी बाहुओं में रह जाती। भारी आलिङ्गनों के बाद जब ज़रा सँभलती, धक् से रह जाती। पति की मूर्ति के आगे यह ठीक नहीं। हलके-हलके पति की मूर्ति को स्मृतितल से हटाकर, उस लड़के के आश्रय में, फिर वह गहरी नींद सो जाती। तब यदि पति आकर जगाना भी चाहता, वह कहने को तैयार थी, "हाँ-हाँ, यह क्या—तुम कैसे हो? कुछ तो अपना ख़याल किया करो। तुम मेरे पति हो। नाहक फ़िक्र करते हो, अपने स्वास्थ्य का भी तो कुछ ध्यान रखते। तुम्हीं तो मेरे........"

अपने शरीर के अंग-अंग पर उसे मोह होता चला गया। जैसा भी उसका वह शरीर था, उसको ठीक चलाने का सवाल उसी को हल करना चाहिए। शरीर के अंग अंग में प्रबल आग लगती जा रही थी। कभी वह अपने हाथ की उँगलियाँ ख़ुद ही मसलने लगती, कभी उस नारी-अंग से उत्तेजित हो वह अपने सारे शरीर को भस्म करना चाहती। शरीर की वह भूल उठती-उठती जाती थी। वह विकार बनकर सारे दिमाग़ को भी ढकती जा रही थी। वह कुछ भी सोच नहीं सकती थी। आधी रात तक उसे नींद नहीं आती। अगले दिन सुबह वह जेल के बड़े डॉक्टर से मुलाक़ात करने की प्रार्थना करती, "मेरी तबीयत ठीक नहीं है।"

"क्या बात है?"

"दिल डूबने लगता है। नींद नहीं आती।"

"सभी को यह बीमारी है।" हँसते हुए वह बोला और कम्पोडर से सोने की डोज़ देने को कह चला गया।

तब नींद क्यों नहीं आती। कुछ भी कारण मालूम नहीं हुआ। दवा पीकर कितने दिन इन्सान सोया रहे। एक, दो तीन, चार...... अन्दरूनी इलाज चाहिये था सुमित्रा कुछ भी नहीं जान पाई। जैसे कि रोग है, व्यवस्था नहीं। वह रोगिणी है, कोई उसकी देख-भाल नहीं करता। उसकी किसी को परवाह नहीं। वह मर जावेगी। मरने में कोई भी देर नहीं है। डॉक्टर भी उसकी हँसी ही उड़ाता है। वह उसका गला घोंट सकती थी। वह बदमाश है। अपने पेशे का ख़याल उसे नहीं। सोने की दवा देकर ही उसने बहका दिया। अब वह उससे कुछ भी नहीं कहेगी। उसे देखेगी भी नहीं।

तभी एक दिन उसे अपनी एक सहेली का ख़त मिला। ख़त में उसकी प्रशंसा की गई थी। अपनी असमर्थता ज़ाहिर की थी कि उसके बच्चा होनेवाला है, इसीलिए वह फ़िलहाल कुछ सेवा नहीं कर सकती। देश की ज़िम्मेदारी के साथ-साथ माँ की ज़िम्मेदारी का ख़याल रखना भी ज़रूरी है।

अचरज में वह पड़ गई। उसका बच्चा न मरा होता, तो वह भी इन सारे झमेलों में नहीं पड़ती। लेकिन अब कुछ भी उपाय नहीं। जो हो गया, उसको बुख़ार बना मन में पाल रखना भी अनुचित बात है।

जेल से छूटकर सुमित्रा बाहर फाटक पर पहुँची थी कि देखा, उसकी कार खड़ी है। वह पास पहुँची। लोगों ने माला पहना दी। वह कार में बैठी। देखा कि एक लड़का ड्राइवर के साथ बैठा है। पूछा उससे, "प्रोफ़ेसर साहब नहीं आये ?"

"वे कालेज गये हैं।" उसने साधारण जवाब दिया और चुप ही रहा

कोठी पर कार से उतरते हुए एक बार उसकी आँखें उस लड़के

से मिलीं। एकाएक दिल में सवाल उठा—वह कौन है? उसकी आँखों का एक भारी प्रभाव उस पर पड़ा। वह जैसे कुछ याद करना चाहती थी। उसके व्यक्तित्व के भीतर जैसे कि वह जगह ढूँढ़ रही थी। लापरवाही से वह भीतर पहुँचते बोला, "आप अब खा-पी लें। सब कुछ तैयार है।"

"और आप?" अनायास ही उसके मुँह से निकला।

"मुझे कालेज जाना है।"

"वे कब आवेंगे?"

"चार बजे।"

"तब तक क्या मैं यहाँ अकेली ही बैठी रहूगी।" तुनककर वह बोली। कहने को तो कहा—सोचा फिर कि यह कैसा अधिकार प्रदर्शन उसने शुरू किया है।

महीम इसका क्या जवाब देता। चुपचाप सोफे पर बैठा रहा।

"आपने तो यह भी नहीं पूछा कि जेल में कैसी रहीं?"

"हाँ-आँ...?" वह आगे कुछ नहीं बोला।

बूढ़ी नौकरानी आगई थी। बोली, "माँ जी, खाना तैयार है।" महीम को देखकर फिर कहा, "भैया, कालेज नहीं गये?"

महीम बोला, "अब जारहा हूँ।"

सुमित्रा ने एक बार मुँदी आँखों से महीम को देखा। चुपचाप चला गया। सुमित्रा ने नौकरानी से पूछा, "यह कौन है?"

"साहब के मौसी के लड़के।"

"महीम बाबू हैं?"

"हाँ।"

एक मोटी कापी हाथ में लिये महीम साइकिल बाहर निकाल रहा था। सुमित्रा ने पुकारा, "महीम बाबू !"

महीम ने साइकिल दीवार के सहारे टिका भीतर आकर पूछा, "आपने बुलाया है ?"

"मैं तो आपको पहचान नहीं सकी थी, माफ़ करना।"

"कुछ काम है ?"

"नहीं, वैसे ही बुलाया था।"

महीम कालेज चला गया।

दिन में सुमित्रा खा-पीकर पलँग पर लेट गई। उसे ख़याल आया कि महीम का चेहरा उसी कालेज में पढ़ते लड़के की तरह है, जिसके लिए कभी वह पागल हो उठी थी। तब क्या वह महीम के प्रभाव में आ गई है। वह कितना ही अस्वीकार करें, वह महीम बाबू को देखने ही कुछ स्वस्थ हो गई भीतर दिल में भी एक कुलबुलाहट शुरू हुई थी, जैसे कि वहाँ पीड़ा होती हो। वह घाव अब कसकता जा रहा था। महीम की शारीरिक सुन्दरता की महक का ज्ञान भी उसे हो आया। वह कुछ भी मन में उलझन पैदा नहीं करेगी। उसके दिमाग में कुछ अजीब सनसनाहट पैदा हो रही थी। वहाँ भी आकर्षण का प्रभाव जैसे कि फैल गया हो। वह महीम से फिर भी दूर रहना चाहेगी। यह सब तृष्णा ग़लत है।

सुमित्रा धीरे-धीरे महीम की ओर खिंचती गई। पहले-पहल उसके जीवन में एक पगला सवाल महीम के नज़दीक रहने का उठा। महीम की आँखों में कुछ भी उत्साह न पाकर वह ठंडी पड़ गई। यदि उसमें ज़रा भी आग होती, वह उसकी लपटों से लिपट कर राख बन जाती। उसे कदापि छोड़ती नहीं।

प्रोफ़ेसर बड़ी-बड़ी रात तक अपने दर्शन-शास्त्र की पुस्तकों में ही डूबा रहता था। दुनिया, उसका भीतरी तत्त्व; आत्मा, परमात्मा, मनुष्य और उसकी मुक्ति! किन्तु सुमित्रा, महीम के कमरे में जाकर बैठ जाती। छेद-छेद कर पूछती, "तुम उदास क्यों रहा करते हो। तुम को घर अच्छा लगता है या यहाँ। अच्छा, मेरे यहाँ न रहने पर तो तुम मजे में रहा करते होगे। अब तो तुमको अपनी स्वतन्त्रता पर रोड़ा लगता है। लेकिन मैं तो ग़ैर नहीं। नौकरानी बढ़िया खाना बनाती होगी। मैं तो फूहड़ ठहरी......!"

महीम क्या जवाब देता। सुमित्रा हताश हो उठती, जैसे कि यह महीम सब कुछ जानकर भी अलग ही रहना चाहता है। यह कैसा लड़का है। वह क्या उससे कहे। वह मानेगा नहीं। तभी सोचती कि वह उससे प्रेम करती है। उसकी इसमें कोई ग़लती नहीं—न करती, तब भारी स्वार्थ होता। वह कितना अजीब जन्तु है। इतना स्वतन्त्र स्वभाव, विचारवान्—तो क्या साधारण दर्जे के बीच उसे चलना ठीक नहीं लगता। आधी रात पति के पास लेट उसे स्वप्न होता कि महीम बच्चे के रूप में उसकी बच्चेदानी के भीतर बैठा हँस रहा है। उसकी नींद टूटती—कुछ नहीं, कुछ नहीं!

सुमित्रा ने तर्क किया—माना कि वह पुरुष अधिक है। अपने विचारों से बाहर औरों का प्रभाव वह नहीं चाहता। उसके भीतर एक अचेतन गंभीरता है। बाहर वह कहीं भी ठीक व्यक्त नहीं होता। भीतर की गहराई में तब भी कुछ न कुछ चाहना होगी ही। वह चाहना मिट नहीं सकती। अभी वह नारी के स्पर्श मात्र से चौंक उठता है। एक दिन आएगा जब......!

एक बार दिन में महीम राजनीति की मोटी किताब मुँह पर फैलाए

सो रहा था। सुमित्रा कमरे में आई। पुकारा, "महीम बाबू!"

महीम आँखे मलता हुआ उठ बैठा। देखा कि सुमित्रा खूब सज धज कर सामने खड़ी है। उसके उस शृंगार को देखकर वह अचरज में पड़ गया।

सुमित्रा बोली, "क्या पढ़ रहे थे, महीम बाबू?"

"पढ़ नहीं, सो रहा था।"

"किताब से मुँह ढककर कि किसी की नजर न लग जावे!"

"नहीं तो।"

"अच्छा महीम बाबू, एक बात बतालाओगे?"

महीम ने सुमित्रा की ओर देखकर आँखे फेर लीं।

"तुम मुझसे डरते क्यों हो?"

"आप से!"

"मैं तुम्हें गुलाम बनाकर बेच तो दूँगी नहीं। यह तो पहले जमाने का चलन था। अब वह दस्तूर नहीं है।"

महीम सुनता ही रह गया।

"और न मैं पिशाचिनी हूँ कि तुमको खा जाऊँगी।"

"आप क्या कह रही हैं!"

"क्यों, क्या हुआ?"

महीम फिर चुप।

"आप इतने बेवकूफ भी नहीं हैं" कहती सुमित्रा खिलखिलाकर हँसी। उसका सारा चेहरा गुलाबी पड़ गया।

महीम ने अब सोचा, नारी का सुन्दर होना भी उसकी मानसिक दुर्बलता को बढ़ा देता है। यह सुमित्रा जो उसके आगे ज़रा भी छुपकर रहना नहीं चाहती थी, कितनी सजावट से मोहनी बनी उसे फुसलाती

है। वह भावुक कम था। वह जानता था कि क्षणिक आवेश एक मिथ्या बात है। असत्य का एक खयाल भी बार-बार उसे घेरता था। सुमित्रा पर कौन-सा अधिकार उसका था। वह किसी अज्ञात और असंभव चीज़ को प्यार करना चाहता था। सुमित्रा वह नहीं थी। उसने सुमित्रा पर बहुत कम सोचा था। अब कभी-कभी वह प्राकृतिक नारी लगती थी। अपने दिल में सुमित्रा के लिए कोई भी हल्ला पैदा नहीं होने देना चाहता था। उससे वह डर क्यों जाता है। सुमित्रा का भीतरी अस्तित्व क्या उससे भी बलवान् है। वह भावुकता को हमेशा बिखेरकर भाग जाना भी सीख गई थी। महीम का भीतरी पुरुष बार-बार उसे धिक्कारता था कि वह पुरुष का सही 'सिम्बोल' नहीं है।

सुमित्रा अपने मन ही मन सिकुड़ गई कि क्या वह पगली हो गई है जो महीम के लिए अपनी बेचैनी बढ़ा रही है। कितना तिरस्कार वह उसके लिए सहती है।

फिर वह महीम के कमरे में पहुँची। महीम उसी उलझन में था।

वह बोली, "क्या सोच रहे हो, महीम बाबू?"

"कुछ नहीं।"

"मैं जानती हूँ।"

"क्या आप…।"

"हाँ, खूब जानती हूँ।"

"आप क्या कह रही हैं?"

"अच्छा तो बताओ, क्या सोच रहे थे?"

"कह दिया कि कुछ भी नहीं।"

"यही सोच रहे थे कि यदि मैं इतनी खूबसूरत नहीं होती, तो मेरा खून कर डालते।"

"क्या कहा आपने ?"

"अच्छा महीम बाबू, मैं आपको फूटी आँखों नहीं सुहाती तो अपने साइन्सरूम से कोई जहर लाकर दे दो। सच कहती हूँ, खाकर मर जाऊँगी।"

महीम भौंचक्की सुमित्रा की ओर देखता ही रह गया। सुमित्रा तब बोली, "तुम्हारी कसम खाकर कहती हूँ। मुझे इस ज़िन्दगी में कोई सुख थोड़े ही है।"

महीम फिर चुप।

"और जहर लाकर दे दोगे तो तुम्हारा अहसान भूल नहीं सकूँगी। बेकार तुमको भी परेशान किया करती हूँ।"

"मुझे—नहीं।" महीम का एतराज़ था।

"सच कहते हो ?"

"हाँ।"

"मेरी क़सम खाओ।"

"आप की।"

"देखो न, झूठ पकड़ ली। अच्छा, झूठ बोलने की इसमें क्या ज़रूरत थी ?"

"मैंने सच कहा है।"

"तब क़सम खाते ?"

"क्या क़सम खाऊँ ?" महीम उलझन में बोला।

"तुम मुझे प्यार करते हो ?"

सुमित्रा खिलखिला कर हँस पड़ी। कहा, "ज़रा फुसलाया, मान गये। कैसे आदमी हो जी !"

परास्त महीम के मुँह से छूटा, "क्या—क्या"

"क्या नहीं !"

सुमित्रा बाहर खिसक गई।

महीन ने देखा—सोचा कि यह क्या तमाशा है।

वही सजावट और शृंगार सुमित्रा का था।

अगली दुपहरी को कालेज से लौटकर महीम ने देखा, सुमित्रा अस्त-व्यस्त, अर्द्ध मग्न, उसके पलंग पर पड़ी है। नीला पेटीकोट और उसके ऊपर गुलाबी ब्लाउज़। सौन्दर्य नग्न-अंगों की उस प्रदर्शिनी को देख वह अचकचाहट में पड़ गया। बाहर आया और पुकारा, "महरी, ओ महरी !"

"क्या है, महीम बाबू ?" सुमित्रा आँखें मलते उठी।

महीम सुमित्रा की ओर नहीं देख सका।

"क्या चाहिए ?"

"कुछ नहीं।" कह वह सुराही से गिलास में पानी भरने लगा।

"मैं भी पिऊँगी।" सुमित्रा बोली।

महीम ने पानी का गिलास दे दिया। चुपचाप बाहर आकर फिर वह खड़ा हो रहा। दूसरे गिलास में उसने पानी निकाला और पी लिया। जैसे कि इस परिस्थिति का ज्ञान उसे नहीं।

मुझे माफ़ करना, महीम बाबू। ग़लती से किताब पढ़ते-पढ़ते नींद आ गई थी।" वह उठकर बाहर चली गई।

सुमित्रा का भीतरी रूप महीम को बड़ा मनमोहक लगा। वह चुपचाप कमरे में कुर्सी पर बैठकर काग़ज पर व्यर्थ रेखायें खींचता रह गया। कितना ही मन को समझाया, भारी-भारी साँसें कम नहीं हुईं। सुमित्रा फ़िर आई, किन्तु इस बार अपने शरीर को खादी की सफ़ेद

साड़ी से उसने ढक लिया था। पास आकर कहा, "मैं भी पढ़ना चाहूं तो क्या पढ़ सकती हूँ।

"आप क्या पढ़ेंगी!"

'जो कुछ तुम पढ़ा दोगे।"

"तब दर्शन-शास्त्र क्यों नहीं पढ़ती?"

"क्या मैं वैसे ही कम पगली हूँ!"

"पगली?"

"अच्छा महीम बाबू, जब तुम कमरे में आये तो तुम्हारे दिल में क्या बात उठी थी?"

"कुछ भी नहीं।"

"झूठ बोलते हो।"

"झूठ?"

"और महरी को बुलाकर क्या तुम दिखलाना चाहते थे कि मैं कितनी बेहया हूँ!" सुमित्रा गंभीर हो गई।

"क्या?"

"मुझे तो ऐसे ही लगता है।"

"वह तो तुमको जगाने के लिए किया था।"

"सोई देखकर ईर्ष्या हुई होगी।"

"नहीं।"

"तब जगाने की क्या ज़रूरत थी?"

"योंही।"

"तुम भी अजीब आदमी हो। एक बात कहते हो और कुछ नहीं जानते।"

महीम चुप रहा।

"अच्छा, मुझे उस तरह देख तुम्हें कितनी ईर्ष्या हुई थी ?"

"ईर्ष्या ?"

"लोभ सही ।"

महीम ने जवाब नहीं दिया ।

उस रात महीम को नींद नहीं आई । वह न जाने क्या-क्या सोचता रहा । यह सुमित्रा क्या है । कुछ भी समझ में नहीं आती । एकदम एक पहेली है । इतने दिन रहकर रोज़ ही वह समझ लेना चाहता है, किन्तु कुछ नहीं मिलता । वह उससे डरता भी है । पर यह डर क्यों ? कहीं भी झगड़ा उनके बीच नहीं । सहज भाव से ताने सुनकर भी वह घबड़ा घबड़ा जाता है ।

बड़ी रात गये महीम को नींद आई ।

अगले दिन दोपहर को उसने अपने कमरे का दरवाज़ा खोला । देखा कि फिर सुमित्रा अस्त-व्यस्त उसके पलँग पर सो रही है । उसे अपनी 'अर्थ शास्त्र' की किताब निकालनी थी । एक बार वह सुमित्रा के पास खड़ा हुआ । उसके समूचे शरीर को देखा । दिल में एक कुड़-कुड़ाहट महसूस हुई । चुपके आगे बढ़कर सिरहाने से किताब निकाल रहा था कि उसके हाथ को अपनी हथेली से ढँकते, हड़बड़ी में, सुमित्रा उठ खड़ी हुई । आँखें मल, महीम की आँखों में डुबोते, घूरते बोली, "महीम बाबू !"

जब कभी सुमित्रा आगे पड़ती, उसके शरीर के भीतरी तत्व के स्पष्ट सौन्दर्य का अन्दाज़ लगाते ही महीम सिहर उठता वह नारी-शरीर निर्जीव रहने पर भी गतिहीन नहीं, उसमें प्राण है । वह देय और रोचक है । महीम अपने भीतर न जाने क्यों बहुत उतावला हो जाता । अकेले में महीम को सुमित्रा देख पड़ती, वह चुपके से कहता, 'सुमित्रा !"

और वह चटपट कहती, "महीम !"

महीम कभी मज़ाककर झोंटी पकड़ना चाहता, तभी अजनबी, मिलावटी झुँझलाहट में सुमित्रा कहती, "बड़े बेशरम हो !"

"मैं !"

"देखते नहीं, महरी हमारी सारी बातें भाँपा करती है। उसके सामने तो अपनी शरारतों से बाज आया करो।"

"लेकिन तुम ?"

"तुमको पालतू बना रही थी !" सुमित्रा भाग जाती।

महीम कितना ही ग़ुस्सा हो, झुँझलावे, झगड़ा करे,.......लेकिन सुमित्रा व़क्त पहचानती है। वह महीम की तरह उतावली नहीं रहती। महीम अपने रोज़ाना जीवन में नारी-शरीर का 'व्यापक' उपयोग पाकर फूल उठता। सुमित्रा तब कहती, "अब तो नाख़ुश नहीं हो ?"।

"मैं !"

"ठीक तरह खाना भी नहीं खाया, क्या मैं नहीं जानती हूँ।"

"तुम बहुत सुन्दर हो, सुमित्रा !"

"अब चुप रहो। तुमको अपना मतलब गाँठना था, पूरा हो गया।"

"मतलब !"

"महरी भी जान गई है।"

"जान गई है !"

"तुम्हारी हरकतें ही ऐसी होती हैं।"

"मेरी !"

"बात-बात में नाख़ुश हो जाया करते हो। मेरी मजबूरी का भी तो कुछ ख़याल किया करो।"

"सुमित्रा !" महीम ने घबड़ाकर कहा।

"खैर, डर की कोई बात नहीं। न महरी ही उसे ज्यादा समझना चाहती है।"

महीम चुप हो जाता। गुरु से ठीक-ठीक समझ लेने के बाद कोई भी सवाल पूछना वह नहीं चाहता था। सुमित्रा भी बाक़ी बातों की अवज्ञा कर देती थी। कभी-कभी महीम के दिल में बात उठती कि यह सब क्या झगड़ा उसने मोल ले लिया है। सुमित्रा हल्की-सी मुस्कान से उसकी क्या और क्यों को हटा देती थी।

सुमित्रा को भारी तसल्ली महीम ने दी थी। वह बहुत प्रसन्न थी। पति के वही दर्शन-शास्त्र की पोथियाँ थीं, वही अपना दायरा था। सुमित्रा पति से कहीं भी नाख़ुश नहीं थी। पति के लिए उसके दिल में पूरा आदर और श्रद्धा थी। पति के प्रति कभी भी उसके दिल में अविश्वास नहीं उठा—आज भी यदि कोई उसके सामने पति और महीम, दोनों में से, एक के साथ रखने का सवाल उठाता, वह पति के पक्ष में ही अपनी राय देती।

कभी-कभी सुमित्रा मज़ाक करने कहती, "महीम!"

"क्या है सुमित्रा?"

"अब तो डर नहीं लगता?"

"नहीं सुमित्रा!"

"भाग्यवान् हो तुम।"

"क्यों?"

"नहीं तो कौन इतनी शिक्षा देता।"

"क्या कहती हो यह!"

"जैसे कि बुद्धू हो।"

अचकचाकर वह रह गया। कुछ नहीं बोला।

'तुम दुनिया में कुछ भी तो नहीं जानते।"

महीम अधिक बात न बढ़ाता। वह चुप हो रहता। सुमित्रा हर रूप में उसके लिए सहूलियत बरतती थी। उसकी कमजोरियों को जान-कर भी हमेशा उसके साथ सावधानी से रहती।

एक दिन महीम सुबह के व़क्त पढ़ रहा था। तभी सुमित्रा आई। बोली, "महीम!"

"क्या है सुमित्रा?"

"अब तुम बोर्डिंग चले जाओ।"

"क्यों सुमित्रा?"

"मेरे तीन महीने का गर्भ है।"

"क्या?" महीम अवाक् रह गया!

"सब तुम्हारे ही करतब हैं।" कह वह मुस्करा पड़ी।

महीम के नारी के इस रूप पर बड़ी झुँझलाहट उठी। सुमित्रा समझ कर बोली, "क्यों, दुःखी हो गये?"

"सुमित्रा!"

"तुमको बोर्डिंग जाना ही होगा। यही तुम्हारे और मेरे हक में ठीक है। उनसे तुम्हारे बोर्डिंग जाने की चर्चा मैंने की थी। यहाँ पढ़ाई भी ठीक नहीं होती है।"

महीम उस दिन साँझ को बोर्डिंग चला गया।



राज रानी

सामाजिक, धार्मिक और व्यक्तिगत ज़िन्दगी की सारी रस्मों को पूरी करने के लिए सेठजी ने आख़िर, पैंतालिस साल की उम्र में, सत्रह साल की एक लड़की से शादी की। पूरे पाँच हज़ार रुपये बेटी के बाप को दिये, चार हज़ार धूम-धाम में ख़र्च किये, पति कहलाने का पूरा हक़ उन्हें मिला। ग़रीब माता-पिता की इकलौती लड़की। दुनिया के सुखों को उसने नहीं पहचाना था। पिता के घर न ठीक खाने को मिला, न पहनने का शौक ही पूरा हुआ सन्तानों की गृहस्थी

लँगड़ाते-लँगड़ाते चल रही थी। श्यामा सबसे बड़ी थी। भाइयों की देख-भाल, छोटों को नहलाना-धुलाना, रसोई का काम और चौका-बरतन—यही उसकी दुनिया थी। सिर उठाकर देखने की न उसे कभी इच्छा हुई, न कोई मौक़ा ही मिला। शहर की हवा उस गृहस्थी में कभी भी काली ताऊन की तरह नहीं घुसी जो हरियाली की उम्मेद होती। पिता उसे पति के चरणों में सौंपा; माँ ने हर तरह उसकी ज़िम्मेदारियों को समझाया बुझाया कि पति देवता होता है, दोनों-तीनों ने बिदा-समय ख़ूब-ख़ूब आँसू बहाये। आस-पास मुहल्ले की औरतों ने उसके भाग्य की सराहना की। बूढ़े पण्डित ने कहा कि उसका भाग्य बहुत अच्छा है, राज-रानी बनने को ही वह पैदा हुई है।

दो महरी, एक महाराजिन, बात-बात में आदर और मान। अपने कमरे को देख कर वह दंग रह गई। रेशमी कपड़ों से भरे सन्दूक साड़ियाँ, जम्पर, गहने, सुन्दर-गले में पहनने की मालाएँ, अचरज में वह सब कुछ देखकर चुप रह गई। शृङ्गारदान, उसके भीतर की सामग्री,सब और सारी चीज़ों से उसे बहुत कुतूहल हुआ। अवाक् बड़ी देर तक यह सब कुछ, खोई सी, देखती रही। नौकरानी आकर बोली, "कुछ चाहिए तो नहीं?"

महरी की तरफ़ उसकी आँखें घूम कर रह गईं।

"मालिक दूकान गये हैं। जो ज़रूरत हो, वह आ जायगा।"

वह सारे मकान, सब ऐश्वर्य और उसकी सारी चीज़ों को, एक एक करके देख लेना चाहती थी। लेकिन भीतर मन उमड़-घुमड़ रहा था—माँ चौके में होगी। छोटे भाइयों के नहाने का वक़्त हो गया, वे स्कूल जाने की तैयारी में होंगे। उनकी देख भाल अब कौन करेगा। इन्द्रा अपनी जीजी के साथ आने को तैयार थी। वह चली आती, ठीक

होता। माँ अकेले उतना काम कैसे सँभाल लेगी! वे सब उसकी याद करते होंगे। लेकिन उसे तो वहाँ अब जाना नहीं है। वह तो यहीं रहेगी। वह उसका झूठा घर था, यह असली है। फिर छोटा बिन्दू तो किसी के पास नहीं आता। इससे झगड़ता है और मौका पाते ही मुहल्ले के लड़कों के साथ खेलने भाग जाता है। दिन भर लापता रहता है। खेलना ही उसका काम है। उसे वह बहुत मना-बुझाकर रखती थी, "बड़ा राजा-बेटा है। किसी से झगड़ा नहीं करना चाहिये। नहीं तो जीजी ग़ुस्सा हो जावेगी...!"

"अच्छा जीजी, अब तुम तो ग़ुस्सा नहीं हो?"

"अब नहीं। तू सबसे अच्छा है; राजा-बेटा! नौकरी करेगा, बहू आवेगी। अच्छा, तब तू जीजी का कहना मनेगा या बहू का?"

"जीजी का!"

"धत्, तब जीजी को पूछेगा भी नहीं!"

बिन्दू कहता, "जीजी, जब मैं कमाने लगूँगा, सब तुझे दे दूँगा।" वह उसकी बातों पर हँस पड़ती। बिन्दू को वह क्यों प्यार करती थी। यदि वह जानती कि इस तरह मायके में वह भी छूट जावेगा तो कभी उसे अधिक प्यार नहीं करती। अच्छा, बिन्दू क्या सोच रहा होगा? वह आने को मचल उठा था। बड़ी मुश्किल से उसने समझाया था, "राजा-बेटा, बहिन के ससुराल नहीं जाते!"

"क्यों जीजी?"

"योंही, कहने की बात नहीं है।"

"तब तुम कब आओगी जीजी?"

"वहीं मर जाऊँगी!"

"मर जाओगी—क्यों जीजी?"

"तू रोयेगा न ?"

"ख़ूब !"

"अच्छा, तुझे क्या चीज़ पसन्द है ?"

"वह जो तेरा खानेवाला डिब्बा है।"

"उसका क्या करेगा रे ?"

"क़लम, पेन्सिल, दावात रखूँगा...."

लेकिन अब वह इस घर की मालकिन है। उसे हुक्म चलाना है। उसके ज़रा से इशारे पर, बस, सब कुछ होगा।

"मालकिन !"

"क्या है ?"

"आप नहा-धो लें !"

"और वे ?"

"न जाने कब तक आवें !"

"पीछे नहा लूँगी।"

फिर एक भारी उदासी। सुबह की गाड़ी से वह पहुँची है। अभी कुछ ही घन्टे हुए होंगे। कुछ भूख भी लग रही है। मन में अजब बेचैनी घर करती जा रही है। आखिर वह उठी। आलमारियाँ खोलकर देखीं—कई तरह की चीज़ें। एक बार उस बड़े मकान का चक्कर लगाया। भारी भूलभुलैया, कुछ समझ नहीं पड़ा। आकर पलँग पर लेट गई।

पति न जाने कब घर में आ गये। थककर अस्तव्यस्त वह सो गई थी। स्पर्श पा जग पड़ी। वह बोले, "तुमने नहाया नहीं; यहाँ तो रोज़ का यही धन्धा है। सुबह सात बजे जाना, दूकान सँभालनी, दिन को खाना खाकर फिर वही काम और रात को भी बड़ी देर तक कभी-कभी रह जाना पड़ता है।"

श्याम ने सुना और चुप रही। कुछ कह न सकी। पति ने पूछा, "बुरा लग रहा होगा! इन्द्रा को बुलवा लेंगे।"

"इन्द्रा?"

"हाँ..."

"नहीं, बेकार आकर वह क्या करेगी।"

पति-पत्नी का संस्कार प्रचलित रिश्ता चालू था? श्यामा के दिल में भारी उदासी भरती आ रही थी। पति अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह निभाता था। श्यामा की पूरी चिन्ता उसे थी। पूछता, "कल रात तुम्हें नींद नहीं आई क्यों?"

"क्या?"

वह कुछ और नहीं समझना चाहती। समझने की जरूरत भी नहीं। पति फिर पूछता, "वह नई साड़ी पसन्द आई?"

"साड़ी!"

"तब अच्छी नहीं हैं।"

"कौन सी?"

"वह जो कल साँझ लाया था।"

वह कहती, "सन्दूक में रख दी है। अब देख लूँगी।"

फिर वही पिता का घर। वहाँ जैसे कि वह खुश थी। जब वह मायके पहुँची, उसकी सहेलियों ने बहुत-सी बातें पूछ डालीं। कई सुन्दर गीत भी उसको सुनाये। रोज ही अजीब-अजीब बातें वह सुनती। उसकी एक सहेली की उसी के साथ शादी हुई थी। उसके बच्चा होने वाला था। अपनी शादी के उन दो सालों पर जब वह सोचती, सब व्यर्थ और एक धोखा उसे लगता। सहेलियों में किसी के पति की चिट्ठी आती, वह उसे सुनाती; दूसरी अपने अनुभवी छींटे फेंकती। वह उस जीवन

का ख्याल कर त्रस्त हो उठती। सोचती, उसके पति ने पाँच हज़ार देकर उसे कहीं का न रखा। कभी कोई सहेली ताना मारती, "हम तो सुनते थे, बूढ़ों के लड़के जल्दी हो जाते हैं "लेकिन.. ?"

श्यामा शर्म से अपना मुँह नीचा कर लेती। क़सम खाती कि वह उनसे बातें नहीं करेगी, उनके साथ नहीं खेलेगी। क़सम फिर टूट जाती। सहेलियाँ कहतीं, "श्यामा, तू राजरानी है। हमारा घर क्या है—कुछ भी नहीं।"

इस व्यंग्य से वह तिलमिला उठती। सहेलियाँ छेद-छेदकर उससे पूछतीं, वह कोई भी जवाब न देकर चुपचाप लौट आती। सहेलियाँ जब अपने अनुभव सुनातीं, वह अवाक् हो उनको सुनती-सुनती रह जाती। उसके दिल की आग भड़क उठती, वह छटपटाने लगती। एकान्त में रोती कि उसका पति उसे ठग रहा है। वह उसके घर नहीं जावेगी।

पति ने उसके लिए कोई बात कभी भी उठा नहीं रखी थी। उसकी सब जरूरतें पूरी होती थीं। उसकी वह पूरी परवाह करता था। लेकिन मायकें रहकर उसने कई नई बातें सोचीं और समझी। वह सब का निपटारा करना चाहती थी। पति से वह सब कुछ कहना और पूछना चाहती थी। ससुराल पहुँच उसने आधी रात को पति से सवाल किया, "मेरे कोई बच्चा नहीं। मैं बड़ी अभागिनी हूँ।"

"क्या ?"

"मेरी सब सहेलियों के बच्चे हैं। मैं भी बच्चा चाहती हूँ। तुम नहीं देना चाहते, यही वे कहती थीं।"

"वह अपने हाथ थोड़े ही है! भगवान् जब देंगे...."

उसे विश्वास नहीं हुआ। सहेलियाँ झूठ क्यों बोलने लगीं। वह कह उठती, "तुम नहीं चाहते कि बच्चा हो। नहीं तो ?"

पति असमंजस में पड़ जाता। यह क्या झगड़ा शुरू हो गया है। वह इसमें क्या करे। वैद्य जी की सारी ग़लती है। इतना रुपया उनको दिया जा चुका है—कुछ नहीं, कुछ नहीं। अब वह हिन्दुस्तानी दवा नहीं करेगा। ये लोग बेईमानी करते हैं। अंगरेज़ी डाक्टर ज़रूर ठीक दवा देगा। कुछ ख़राबी ग्रहों की भी है। पण्डित जी कहते थे, कुछ दुष्ट ग्रह हैं जो सन्तान होने में बाधा पहुँचाते हैं। अनुष्ठान भी करवाया था, लेकिन कुछ नहीं। फिर दूसरा किया जावेगा।

श्यामा पति से बहुत नाख़ुश है। ठीक तरह खाना नहीं खाती। पति परेशान है। हर एक डाक्टर से राय लेता है, दवा खाता है और वह दिन देखना चाहता है जब कि लड़के की ख़ुशी मनाई जावेगी। श्यामा बहुत झगड़कर भी समझदार है। दिन में चाहे कितना ही झगड़ा हो, साँझ को उसका निपटारा किसी न किसी तरह हो ही जाता है। पति आश्वासन दिलाता कि अगले महीने ज़रूर कुछ होगा, पण्डित जी ने कहा है। सहज-विश्वास को बटोर श्यामा पति के निकट से निकट सट रहती। वह सोचती, इस बार वह बच्चा लेकर मायके जावेगी उसकी सब सहेलियाँ जो उसकी हँसी उड़ाती थीं, उनका सिर वह नीचा करके दिखलावेगी।

तीसरा महीना कट गया। बच्चे का कुछ पता नहीं। दिन को एकान्त में वह अपना पेट टटोलकर देखती। महरी कहती, "माँ जी, कभी कुछ नहीं।"

वह कहती, "ठीक तरह देख। ज़रूर कुछ न कुछ है।" पलँग पर चित वह लेट जाती।

बूढ़ी महरी हँसती। मन ही मन सोचती कि यह कितनी बावली है।

तभी श्यामा कहती, "वे तो कहते थे, दूसरे महीने होगा। यह तो तीसरा महीना हो गया है।"

"वे झूठ कहते हैं।

"झूठ!" वह आश्चर्यचकित रह जाती। समझदार महरी चुप हो जाना सीख गई थी।

वह कहती, "तेरे हाथ जोड़ती हूँ महरी, मुझे बच्चा चाहिए। तुझे इनाम दूँगी।"

महरी गम्भीर हो कहती, "मलकिन!"

"क्या है?"

"उनसे तो होने का नहीं है?"

"यह तू क्या कह रही है?"

"मालकिन, तुम गुस्सा होगी। सच कहे बिना फिर भी रहा नहीं जाता। तुमको देखकर मुझे बहुत अफ़सोस होता है। आज बच्चा खिलातीं। यों ही यह उम्र बीत रही है!"

"तब तूने आज तक... ?"

"मलकिन, बड़े घर की बात है। हजारों बातें होती हैं। हमें तो अपनी रोटी चाहिए, नहीं तो...."

"सच-सच बता, क्या बात है?"

"मलकिन, यह तो भाग की बात है। आज नहीं तो क्या यह घर सूना लगता।"

श्यामा अवाक् रह गई। महरी के आँसू भर आये थे। महरी तक को उसकी फ़िक्र है। उसका पति ही बुद्धू है कि कुछ भी नहीं जानता। आश्वासन दिलाती फिर वह बोली, "तुझे मेरी कसम जो तू...."

"तब मलकिन, छोटी महरी को निकाल देना होगा।"

"जो तू कहेगी, वही करूँगी। साँझ को उसे निकालने को कहूँगी"

"नहीं, अभी नहीं—जबतक कि ठीक-सा नौकर नहीं मिल जाता।"

"नौकर!"

बूढ़ी महरी ने बहुत सारी बातें समझाईं श्यामा भौंचक्की रही। बहुत कुछ मन-बुझाव के बाद राज़ी हुई। महरी निकाल दी गई। जवान कहार नौकर रखा गया। पति ने कोई आना-कानी नहीं की।

बरसात के दिन थे। श्यामा बोली, "मैं ऊपर छत पर नहीं सोऊँगी।"

"क्यों?" सेठजी ने पूछा।

"यहाँ नींद नहीं आती। टीन रात-भर बजता रहता है।"

सेठजी दूकान से बड़ी देर में लौटे थे। वह कुछ नहीं बोले। दिन-भर की थकावट के बाद भारी नींद आ रही थी। कहा, "नीचे ही सो जाना।"

"और तुम?"

"मैं यहीं रहूँगा। यहाँ ठीक नींद आती है। नीचे मच्छरों के मारे परेशानी है। मच्छरदानी के पेट में भी वे घुस आते हैं।"

"मुझे अकेले डर लगेगा।"

"पीताम्बर तो है।"

अपनी इस उपेक्षा पर कुछ देर श्यामा स्तब्ध रही। फिर भी भीतर एक भारी खुशी उसे थी। क्या पति के साथ यही उसका नाता है? महरी ठीक कहती थी, पाँच हज़ार रुपया देकर जैसे कि उसे मोल ले लिया गया है, और कुछ नहीं। कपड़े देते हैं, खाना भी देते हैं—वह तो नौकरानी की तरह भी नहीं। घर में कोई नहीं। दिन भर दूकान

और सट्टे का किस्सा। गेहूँ का भाव गिर गया तो वह इसका क्या करे? चाँदी मँहगी होने की उम्मेद है, तब भी उसे कुछ फ़ायदा नहीं। और शक्कर पर सरकार टैक्स लगा देवेगी, तो भी उसे कुछ नहीं करना है। आज इतनी बोरी बिकीं—रात भर वह गिनती ही करती रहेगी!

न जाने क्यों भारी झुँझलाहट उसके मन में उठी। वह नीचे उतरी नौकर की ओर देखा। वह बरतन माँज रहा था। अपने काम में उलझा था। इससे भारी उम्मीदें हैं। लेकिन इसे कुछ पता नहीं नौकर की जात ठहरी... पति के लिए फिर गुस्सा चढ़ा—यह नहीं हो सकता कि कह दे एक साथ नीचे सोवेंगे। कैसे अजीब आदमी हैं। ऐसे आदमियों की दुनिया में न जाने क्या ज़रूरत पड़ी है! और यह बरतन ही माँजता रहेगा। यही इसका काम है। इसी के साथ यह सब-के-सब अपनी सारी जिन्दगी काट देवेंगे। कब तक यह बरतन माँजता रहेगा। आखिर वह बोली, "पीताम्बर!"

"क्या है?"

"कितना काम बाकी है?"

"बस, धोने ही को है। और तो सब हो चुका।"

"भारी आलस्य की अँगड़ाई लेते हुए वह बोली, "मुझे नींद आ रही है। मेरी चारपाई नीचे चौक में लगा दे।"

"और सेठजी?"

"वे कहते हैं, वहीं रहेंगे। मेरी तो तबीयत खराब हो गई है। रात भर हल्ला होता रहता है। पास स्टेशन क्या हो गया कि रात-दिन इञ्जन की आवाज़ और सीटी ही बजती रहती है?"

वह चुप हो रही। उसे समझाने की क्या ज़रूरत है। उसकी मर्जी

है। वह नीचे ही सोवेगी। पीताम्बर नौकर है, उसको यह काम करना ही पड़ेगा।

पीताम्बर ऊपर से बिस्तर उठा लाया। बिस्तर लगा भी दिया। वह फिर बरतन माँजने में लग गया। वह बोली, "अब रहने दे खड़-बड़, खड़-बड़। सुबह माँजना।"

पीताम्बर ने हाथ धो लिये। लालटेन एक किनारे मन्दी कर रख दी। अपनी दरी और कम्बल उठाया। ऊपर जाने को था कि भरी-पूरी अँगड़ाई लेते वह बोली, "कहाँ जा रहा है?"

"ऊपर।"

"ऊपर—तो क्या मैं यहाँ अकेली ही रहूँगी! मुझे डर लगता है। नीचे ही तुझे सोना होगा, उनसे पूछ लिया है।"

पीताम्बर ने एक और दरी बिछा ली और लेट गया। ऊपर से अपने को उसने कम्बल से ढक लिया।

श्यामा अब क्या कहे। भारी एक पीड़ा दिल में हो रही थी। बेचैनी बढ़ने लगी। वह कुछ भी सोच नहीं सकी। हल्के पुकारा, "पीताम्बर!"

"क्या है?"

"प्यास लगी है, पानी ले आ।"

पीताम्बर पानी ले आया। उसने पानी पी लिया। फिर एक बार पीताम्बर को अपनी भूखी आँखों से घूरा, जैसे कि आज उसका बलिदान ही होगा। कोई छुटकारा नहीं। पूरी तरह तैयार होकर वह आई है वह भागना चाहे, तो भी भाग नहीं सकता।

"अच्छा पीताम्बर, पान का डिब्बा ले आ।"

पीताम्बर ने डिब्बा लाकर रख दिया। तटस्थ वह अब खड़ा था। उसने कहा, "एक पान लगा दे।"

"मैं मलकिन?"

"हाँ तू लगा दे न—कब-कब तेरे हाथ का पान खाऊँगी?"

"मुझे तो आता नहीं।"

"अच्छा, मैं सिखलाती हूँ। डब्बा खोल, चूना हल्के हाथ लगा, अब कत्था, छालियाँ डाल उसकी सारी बातें उसने मान लीं। पान लग गया। श्यामा ने पान ले लिया। पीताम्बर की उँगलियों ने उसे छू-कर बहुत उत्तेजित कर दिया। वही झुँझलाहट आई—इस घर में सब बुद्धू हैं। क्या यह पीताम्बर भी कुछ नहीं जानता है कि फिर कंबल ओढ़कर सो गया। गहरी साँस लेकर बोली- "पीताम्बर!"

"क्या?"

"यहाँ आ।"

"क्या है मलकिन?" पीताम्बर फिर खड़ा हो गया।

"सारे बदन में दर्द हो रहा है। जी बैठता जा रहा है। जरा देख तो, न जाने क्या हो गया है?"

"मलकिन!" पीताम्बर को जैसे काठ मार गया था।

जो बातें सहेलियों ने कही थीं, उनकी पूरी तस्वीर अब श्यामा खींच सकती है। अपने अनुभव से श्यामा ने महसूस किया कि वास्तव में ठीक और सही जीवन उसने पीताम्बर की वजह से पहचाना है। वह उसकी मजबूरी नहीं थी। अब प्रतिदिवस पीताम्बर उसकी जरूरत हो गया था। हर तरह खुश रहकर वह उसे फुसलाती थी।

एक दिन दोपहर को दोनों बैठे हुए थे। पीताम्बर बोला, "मलकिन भाग जावेंगे?"

"कहाँ पीताम्बर ?"

"साथ साथ रहेंगे।"

"मैं कोई कहारिन थोड़ी हूँ, पीताम्बर!" श्यामा हँसकर बोली। आँखे उसकी अब भी पीताम्बर पर ही जमी थीं।

"कहारिन!"

मैं तो यहीं रहूंगी—और तू भी।"

"लेकिन ?"

"डर किसका है रे ?"

तीन महीना के पूरे प्रयोगों के बाद एक दिन श्यामा ने अपने पति से कहा कि अब वह माँ होने वाली है। सेठ जी फूले नहीं समाये। झटपट बोले, "ठीक-ठीक, आज तक मेरे सिर बुद्ध की दशा थी। पंडित जी कहते थे, अब लाभ होगा।"

उस दिन काफ़ी खर्चा किया गया। सेठ जी के पुरुषत्व की चर्चा भी खूब गरम रही। श्यामा भी खुश थी। वह नहीं चाहती कि अपनी सहेलियों के आगे चुप रहे। सिर नीचा करना भी उसने नहीं सीखा था! अब जब वह मायके जावेगी, अपनी सहेलियों की ताड़ना करेगी, उनको नीचा दिखलावेगी।

पीताम्बर ने एक भारी सन्तुष्टता उसे दी थी। इस बात के लिए यह उसकी कृतज्ञ थी। रोज़ाना जीवन में वही हाल चला। पीताम्बर को एकाएक मलेरिया हो गया। बुखार तो पहले से आता था, किन्तु वह अपने को कमज़ोर साबित नहीं करना चाहता था। अपनी मालकिन को वह बहुत प्यार करता था। लेकिन बीमारी बढ़ती ही गई। एक दिन सुबह बूढ़ी महरी ने ऊपर आकर कहा, "मालकिन, पीताम्बर को बहुत बुखार चढ़ा है।"

श्यामा नीचे उतरी। देखा कि पीताम्बर बुखार में न जाने क्या-क्या अनर्गल बक रहा है। वह बोली, "पीताम्बर !"

पीताम्बर बेहोश पड़ा था। उसने अब अन्दाज़ लगाया कि पीताम्बर की तन्दुरुस्ती बहुत खराब हो गई है। पहले वाली चमक कहीं भी चेहरे पर नहीं थी। उसकी आँखों में खोखलापन आ गया था, गाल पिचक गये थे। वह बोली, "महरी, डाक्टर को बुलवा लिया जाय।"

"यह क्या कह रही हो, मलकिन ?"

"ओफ़, बेचारा बहुत बीमार है। तू डाक्टर का घर जानती है। बुला ला। जो कुछ फ़ीस होगी, मैं दूँगी।"

"मलकिन, तब तुम्हारा इरादा मुझे भी निकलवाने का है ?"

"क्यों ?"

"लोग यही कहेंगे न कि मलकिन कहार के लिए बहुत उदार है। फिर चार बातें और भी फैलेंगी। दुनिया को तो दूसरों की बातें फैलाने में मज़ा आता है।"

"फिर···?"

"मैं तो खुद अब उससे पीछा छुड़ाने की सोच रही थी। अपने आप ही भगवान् ने रास्ता निकाल दिया।"

"महरी !"

"मलकिन !"

"महरी"

"तुम घबड़ा क्यों रही हो, सरकारी अस्पताल भिजवा देंगे।"

"यहाँ एक कमरे में पड़ा रहेगा तो···"

"यहाँ यतीमखाना थोड़े ही है।"

"फिर भी"

"मलकिन, दुनिया में हज़ारों भिखमँगे पड़े हैं।

सेठजी के घर आने पर बूढ़ी महरी बोली, "पीताम्बर बहुत बीमार है लल्ली तो एक दम घबड़ा उठी।"

"कब के बीमार हैं?"

"आज सुबह मालूम हुआ। वह तो बहुत घबड़ा गई है। उसे सरकारी अस्पताल भेज देना चाहिए। न जाने क्या बीमारी हो।"

बीमारी का नाम सुनकर सेठजी के होश फ़ाख्ता हो गये। महरी ने नौकर के अस्पताल पहुँचाने की सारी व्याख्या कर दी।

"श्यामा बहुत उद्विग्न हो उठी। रात को पति बोले, "बेचारा बहुत ईमानदार नौकर था।"

"हाँ..." आगे वह क्या बोलती।

"अच्छा हो जावेगा।"

"अस्पताल में?" श्यामा के भीतर एक ठेस लगी।

"क्यों, क्या हुआ!"

श्यामा सँभल गई—वह क्या कह रही है। यह ठीक नहीं।

सेठजी बोले, "श्यामा!"

"क्या है?"

"नई साड़ियाँ आ गई हैं।"

"कौन-सी?"

"वही जो तुमने मँगवाई थी।

"अच्छा!" श्यामा पति के पास सरक गई।

फिर वही फीकापन वही उदासी। सुबह महरी बोली, "मलकिन, अब कोई डर की बात नहीं। डाक्टर कहते थे कि वह बचेगा नहीं। कौन उसकी परवाह करता है।"

"क्यों, उनको रुपये दिये जावेंगे। वह कितना अच्छा था। यह नहीं होगा। तू रुपया ले जा।"

"मलकिन, मैं बूढ़ी हो गई हूँ। आफ़त टली। तुम भी क्या अभी ही हो! तुम्हारी गोदी भरी रहे, और नौकरों की क्या कमी पड़ी है—राज-दरबार है रानी!"

राज-दरबार—भीतर वह चौंक उठी। उस लड़के ने उसे यथार्थ सुख दिया था। लेकिन वह चुप रह गई।

फिर वही फीकापन, वही उदासी, वही शक्कर का कानून, बोरियों की गिनती और पति की साड़ियाँ....।

नौ महीने बाद उसकी छाती का बोझ हलका हुआ—पीताम्बर से वह कितना मिलता-जुलता था। उसका दुःख देख जैसे उससे नहीं रहा गया, वह फिर लौट आया।



छिपकली

मिस राजकुमारी ने बी० ए० पास किया; बी० टी० और एक दि
हिन्दूधर्म की सारी रस्मों के साथ, सात पूरी भाँवरोंवाली मंजिल ल
कर, अग्नि की साक्षी ले वे मिसेज़ कान्त बन गईं। विवाह में व
आधुनिक नारी न रह, पूरी रूढ़ियोंवाली दुलहिन बनी रही। वही लज्जा
शर्म, हिचक और लिहाज़ पूरा पूरा बरता गया। मिस्टर कान्
कोआपरेटिव में इन्सपेक्टर थे। अपनी थोड़ी जमाकी पूँजी के साथ
पत्नी को लेकर, 'हनीमून' के लिए जाना उनको ज़रूरी लगा। राज

कुमारी को भला कोई एतराज क्यों होता। बायरन, शैली और रोमांटिक युग की कविताओं ने एक दिन जीवन में असर शुरू किया था। बी०-टी० की शिक्षा से बच्चों के लिए एक स्वाभाविक मोह स्वीकार करा दिया। 'हिल स्टेशन' पहुँच, एक बार दिल की सारी ऊबड़ खाबड़, रेतीली जमीन हरी हो गई।

'हिल-स्टेशन' में आकर वह बहुत भावुक बन गई। शैली-बायरन की निराशावाली लाइनें, अनायास याद आकर, दुःख फैला जाती हैं। ये पति तब बायरन है या शैली दोनों नहीं, या दोनों हैं। उसका बायरन क्या ऐसा ही होगा? शैली से प्रभावित होकर, अपने कालेज के जमाने में उसने कुछ कविताएँ लिखी थी खुद सखी बनकर, किसी अज्ञात सखा की उपासिका बन गई थी। कालेज के कवि-सम्मेलनों में जब वह कविता पढ़ती तो झूम उठती थी। वह देखती थी कि सारा युवक समुदाय उसे ही देख रहा है। मानो वह देवी हो और वे सब उसके पुजारी। उनमें एक दुबला-पतला टी० बी० का शिकार लड़का उसे बहुत पसन्द था। वह वैसे ही बड़े-बड़े बाल रखता था। उसकी सूरत पर शीवधालों की छाप थी। वह अच्छी तरह कविता सुनाता था। उसकी कविता से वह बहुत प्रभावित हो जाती। कई बार उसकी कविता की एक एक-लड़ी, दिल में परेशानी पैदा करती थी। वह सोती नहीं थी। बैठी-बैठी रात भर किसी अज्ञेय तृष्णा में डूब कुछ लिखना चाहती किन्तु कलम नहीं चलती थी। सारी रात जगी रह कर भी कुछ लिखा नहीं जाता था। वह अपनी भीतरी भावनाओं में घुलती रह जाती।

वह टी० बी० का मरीज! उस लड़के ने उसे बहुत निराश बना दिया। उसकी अनुभूति जाग जाती। आजीवन क्या अपने अस्तित्व को

वह प्यार नहीं कर सकती है ? दोनों में कितनी समानता है, लेकिन उसके चेहरे पर मौत की परछाइँ मिलती जो अन्दर फैलकर, न जाने क्यों पीड़ा पैदा कर देती थी। सच ही एक दिन वह लड़का 'निराशा' बन गया। वह मर गया था। उसके लिए वह बहुत रोई थी। उसकी किताबों की लाइनें दुहरा-तिहरा कर, पढ़ भी शान्ति नहीं मिलती थी। वह अपनी चाहना को दबाती, वह सँभली नहीं। सहारा ज़रूरी लगा। बी० टी० पास करके वह पति के पास आ गई थी। अब हर तरह वह पति को अपना प्रेमी साबित कर उसकी 'प्रेमिका' बनकर रहना चाहती थी। पति से चाहती थी, वह उसे ठीक-ठीक समझाया करे। वह तो है पगली, अपनी कविता के आगे किसी की नहीं सुनेगी। बड़ी सुबह पहाड़ों की चोटियों में घूम घूमकर, परियों की कहानी सोचेगी, भूतों की बातें बटोहियों से पूछेगी। घास-लकड़ी ले जानेवाली युवतियों से गीत सुनेगी। सब कुछ सँवार-कर, रात पति के साथ परियों की राजकुमारी की तरह पड़ी रहेगी। आधी रात सोते से वह उनको जगाती। वह उठते। राजकुमारी बोलती, "वह देखो।"

सामने खुली खिड़की से बाहर अन्धकार मिलता फिर सावधानी से आँख मलकर देखते धुँधली चांद की रोशनी में पहाड़ियों की पंक्ति देख पड़ती।

राजकुमारी तब कहती, "वहाँ मैंने अभी अभी परी जाती देखी है।"

पति चुप रहते। पढ़ी-लिखी पत्नी के आगे कोई सन्देह बढ़ाना जँचता नहीं।

"तुमने शायद नहीं देखा। वह सब अब, दोनों पहाड़ों के बीच की अँधियारी खाई में चली गई है। वह देखो, दीख रहा है न। वह

मशालें-सी जल रही हैं। तुम कहोगे कि जानवरों की हड्डियों का फास-फ़ोरस है। वही सुलग गया। नहीं वहाँ अप्सरायें रहती हैं। वह गाँव उजाड़ है। विज्ञान की बातें मैं स्वीकार नहीं कर सकती हूँ।"

छोटे बच्चोंवाला कुतूहल पत्नी में था, पति उसे अपने में सँभाल लेना। वह सोचती वह भी परी बनेगी। वह भी वहीं रहेगी। वह भी उड़ेगी। अपनी सारी भावुकता के साथ, पति के समीप पड़ी पड़ी न जाने क्या क्या बातें गढ़ा करती थी। पति से वह हर तरह सन्तुष्ट थी। यह 'हनीमून' उसे खूब पसन्द आ रहा था। उसकी सारी एकत्रित की भावनायें भी साथ साथ जड़ पकड़ रही थीं। उसकी भीतरी कविता उमड़ती, पति सब सँवार लेते। वे छलकने का कोई मौका नहीं देते थे। पत्नी खिल उठती। वह पति को देखकर अपने को बहुत खुश पाती। उनका रोज़ाना जीवन क्या नहीं था। वह कहती "चलो घूमने।"

"इस आधी रात को!"

"वाह, कितनी सुन्दर चाँदनी खिली है।"

पति मन मार कर उठते, ओवर कोट ओढ़, साथ निकलते। बड़ी देर तक निरर्थक इधर-उधर घूमने के बाद, लौट आते। तब पत्नी मिन्नत करती, अहसान के बदले कहती "मुझे माफ़ कर दिया करो।"

"क्या!" बात पति के कुछ भी समझ में नहीं आती।

"इसी तरह अब तो परेशान किया करूँगी।"

"अच्छा!" पति हँस पड़ते। उससे कहते थे, "अपनी नई कविता नहीं सुनाओगी।"

"कविता, कौन-सी". वह उनकी ओर टकटकी लगाये देखती रहती थी।

"वही परीवाली।"

"ठीक! यहाँ तो ऐसी ही कहानियाँ प्रचलित हैं। सुना कि एक सुन्दर लड़की थी। वह एक दिन रंगीन कपड़े पहनकर, फूल बटोर रही थी। एकाएक बेहोश हो गई और मरी मिली। उसे अप्सरायें हरकर ले गई थीं। फिर वह दूसरी औरत पर एक दिन भूत बनकर आई और उसने सुनाया कि वह अप्सरा हो गई है। उसकी पूजा की जाय।"

लेकिन पति ऊँघने लगते थे। पत्नी चुप रह जाती। वे सो जाते। पत्नी भी ख्याल करती, पति कितने सीधे हैं। दोनों क्या खेल नहीं करते। वह भाग्यवान् है। उसका पति सब कुछ है। वह भी नींद में भर जाती।

तभी एक दिन एक 'आफर' राजकुमारी को मिला। वह एक हाई-स्कूल में बड़ी मास्टरनी बनाई गई थी। उसने वह स्वीकार कर लिया और बस चली आई। पति भी 'हनीमून' के बाद अपनी नौकरी पर दूसरे शहर चले गये थे। पहले-पहल दोनों के बीच नियमित रूप में खत चलते रहे। उबाल खतम हो गया था। राजकुमारी ने स्कूल की सारी संस्था का भार ले लिया। उसे फुर्सत कम मिलती थी। पति और पत्नी कुछ दिनों तक, एक दूसरे को भूले रहे। पति के पत्र फिर भी आते थे और पत्नी बिना नागा, उनका जवाब भी दिया करती थी।

राजकुमारी को कुछ दिन बहुत बुरा लगा। पिछला सारा जीवन जैसे स्वप्न था। वह अपनी कविता की कापी उठाकर, बार-बार पढ़ा करती थी। पिछली यादों की वजह से गद्-गद् हो उनको गुनगुनाती रहती। शहर में महिला-समिति थी। वही उसकी मंत्राणी बनाई गई। बड़े उत्साह के साथ सामाजिक जलसों में शामिल होना भी शुरू कर

दिया। धीरे धीरे स्कूल कमेटी के मेम्बरों के साथ की हिचक भी हट गई। अब जिस जीवन में वह प्रवेश कर रही थी, वह सन्तोषपूर्ण लगा। कभी-कभी रात को नींद टूटती, तो उस लड़के की एकाएक याद हो आती थी। भले ही उसका उस लड़के से कोई संबंध नहीं था। फिर भी उसकी मौत का धक्का वह न जाने क्यों बार-बार महसूस करती थी। उसकी किताबें फिर एक बार उसने पढ़ डाली। वह उन पन्नों में लिखी निराशापूर्ण पंक्तियों से व्याकुल हो उठती थी। कभी कभी रात में खटका होता तो वह डर जाती। लगता कोई उसकी कापी पर कुछ लिख रहा है। फिर कोई गहरी सांस लेता हुआ चला जाता। वह बहुत व्याकुल हो जाती थी। पति को पत्र लिखती। नौकरी से इस्तीफा दे देने की ठहराती। सब तय हो जाता। वह पति के पास चली जावेगी। यही सुखद है। यही वह करेगी। लेकिन सुबह उठकर वही दैनिक-चर्या में वह रम जाया करती थी। इधर-उधर झाँकने का कोई भी मौका नहीं मिलता था। कई काम होते। दिन भर लड़कियों के बीच घिरी रहती। उन सबको देखकर, हठात् कई भूली बातें फिर याद हो आती थीं। उस सबका कुछ निबटारा न हो पाता। वह काम में तल्लीन रहती। अपने को ज़रा भी खाली होने देना नहीं चाहती थी।

उस दिन बड़ी रात तक वह 'शैली' की कविता पढ़ती रही। बड़ी भावुक बन गई थी। कई बार उसने वे सब दुहराई तिहराई। रात मन उचाट होता जा रहा था। आखिर वह सो गई, काफ़ी थकी हुई थी। बेहोश-सी निर्जीव पड़ी रही। सुबह उठने पर उसने अपने को बहुत सुस्त पाया। दशहरे की छुट्टियाँ थी। पास-पड़ोस में रहनेवाली मैजिस्ट्रेट मिस्टर पुरी साहब की बीबी बैठने चली आई। बातें होती रहीं। मिसेज़ पुरी बोली—"हम,''',जा रही है।"

"....। कब जाओगी।"

"शायद कल रात की गाड़ी से।"

मिस्टर पुरी को राजकुमारी अच्छी तरह से जानती थीं। वह उनकी स्कूल-कमेटी की सेक्रेटरी थीं। वह भी यहाँ छुट्टियों में पड़ी-पड़ी क्या करेगी। साथ चले चलने में कोई हर्ज तो है नहीं। राजकुमारी बोली—"तब मैं भी चलूँगी।"

"अच्छा है। साथ हो जावेगा। यहीं क्या करती।"

अगली रात को वह उनके साथ ट्रेन पर, बैठ गई थी। तभी उसने मिस्टर पुरी की ओर एक बार देखा। वह अपने में भीतर चौंक उठी। उनके चेहरे पर बायरन वाला तेज था। तब क्या बात होगी। उलझन में वह रह गई। सफ़र भर वह बहुत उद्विग्न रही। बार-बार अपने को कोसती थी कि वह क्यों जा रही है।

सुबह वे पहुँच गये थे। मिस्टर पुरी ने होटल में दो कमरे ले लिए। एक में राजकुमारी रहेगी और दूसरे में मिस्टर और मिसेज़ पुरी। वह खूब घूमी। शहर कोई खास अच्छा नहीं लगा। यहाँ मुगलों की बनाई बहुत पुरानी शताब्दियोंवाली इमारतें थीं। कहीं-कहीं उस बीते युग का ख्याल दिल में गुदगुदी पैदा करता था। यह था रँग-महल। यहीं बेगमें रहती थीं। वह सब आज खँडहर से सूने हैं। उनमें चमगीदड़ों ने अड्डा जमा लिया था। यह है बादशाह की खास बेगम का महल। ईंटों पर काई जमी थी। उसके भावुक हृदय पर अतीत के उस वैभव का नज़ारा, चल-चित्र सा गुज़रने लगा। वह बहुत दुःखी हुई। यह रेगिस्तान, उसके बीच यह किला। यह है तब दुनिया का हाल।

"क्या सोच रही हो मिसेज कान्त?" मिस्टर पुरी बोले।

वह सिटपिटा उठी। डरी हिरणी की तरह, चारों ओर कुतूहल से देखा। मिस्टर पुरी ने कुछ कहने का मौका न देते कहा—"यह तो नीचे तहखाना नहीं देखना चाहती हैं। आप चलेंगी। गाइड कहता है...।"

"हाँ, हाँ, चलो, चलो....।" अनायास उसके मुँह से निकल गया। जब तक वह सावधान होती, वह अपने को लाचार साबित कर चुकी थी।

लेकिन अँधेरा। टार्च की रोशनी से भी सीढ़ी उतरते गिरने का डर था। वह क्या करेगी? लौट जावे नहीं। न जाने भीतर क्या हो। "सँभल कर यहाँ सीढ़ी टूटी है।" मिस्टर पुरी बोले।

वहाँ, इससे पहले ही राजकुमारी ज़ोर से 'उफ़' कर बैठ गई।

"चोट तो नहीं लगी।" मिस्टर पुरी बोले।"

"नहीं, नहीं।" वह अब उठ गई। घुटना छिल गया था। अपनी असमर्थता फिर भी वह स्वीकार न कर सकी।

आगे निपट अन्धकार था। टटोलकर रास्ता वह कब तक ढूँढ़ती। मिस्टर पुरी ने अपने हाथ का सहारा दिया, वह इनकार न कर सकी। वहीं एक बार उसे ज्ञात हुआ कि, मिस्टर पुरी कुछ पीकर आये हैं। वह चुपचाप अपने उस बायरन के सहारे से खुश हुई। वह जैसे उसे उबार सकता था।

यह कैसा सफ़र था। अँधेरे में टटोल-टटोलकर चलना, टार्च की रोशनी में आगे देख पड़ता था। एकाएक मिस्टर पुरी रुक गये। गाइड बोला—"इस तहखाने में राजकुमारियाँ अपने प्रेमियों को मरवा-कर फेंक देती थीं। यहाँ चूना और नमक भरा रहता था। लाश सड़ जाती थी।"

राजकुमारी का सारा बदन काँप उठा। मिस्टर पुरी यह महसूस कर, चुपके से बोले—"आप तो काँप रही हैं।"

"मैं नहीं।"

"तब बहुत बहादुर हो।" हँस पड़े।

राजकुमारी भीतर ही भीतर दुबक गई। क्या मिस्टर पुरी उसका सारा भेद जान रहे हैं। हो सकता है। उनको जान लेना चाहिए। हर्ज क्या है। वह तो....।

मिस्टर पुरी अब बोले—"राजकुमारियों की प्रेम-कहानियां भी बहुत मजेदार होती थीं। अपने प्रेमियों को ठगकर, शिकार खेलनेवाली हिंसा वह न जाने कहाँ से पा-गई। वैसा तो नारियां न कर सकती हैं।"

'हिंसा' वह एकाएक चौकन्नी हो गई। बोली— 'हिंसा तो पुरुष ने सिखाई है।"

"पुरुष ने ....।"

"आपने बायरन पढ़ा....।"

"वह।"

"बायरन में हिंसावाला गुण होने पर भी, एक उसकी पत्नी सारे अवगुण जानकर अलग रही, बहिन ने सदा के लिए एक लड़की उससे पाकर, अपना जीवन बिसार दिया। उसकी उस हिंसा के लिए नारी पागल हो उठती थी।"

मिस्टर पुरी ने तो हाथ छोड़ दिया था। इस कथन से जैसे वह अवाक् रह गये हों। राजकुमारी भी यह क्या कह बैठी थी। मिस्टर पुरी कुछ देर बाद बोले—"आप भी तो कविता कर लेती हैं।"

"मैं।"

"परसों वह एक अखबार दिखला रही थी। उसमें आपकी कविता छपी थी। कभी कालेज में वह पुरस्कृत हुई हैं।"

"जब शौक था।"

"और अब!"

"छूट-सा ही गया समझो।"

"सुना आप आजकल भी कुछ लिखा करती हैं।"

"क्या!"

"जरूर लिखती होंगी, यह दैवी दान है।"

"अब तो छूट गया है। वक्त नहीं मिलता।"

"तो भी आपको अपनी कविता आज सुनानी पड़ेगी।"

"कभी एक दिन ज़रूर सुनाऊँगी।"

आगे दोनों चुप हो गये। ऊपर पहुँचकर रोशनी में अपने को पा राजकुमारी पुलकती हुई बोली—"अब जान बची है। गला घुट गया था।"

रात राजकुमारी को नींद नहीं आई। 'हिल-स्टेशन' में उसने एक सुन्दर पहाड़ी गीत सीखा था। वह उसे गुनगुनाती रही। फिर खिड़की से बाहर देखने लगी। चारों ओर निपट सुनसान था।

गुनगुनाती वह गीत गाती रही। मध्य रात्रि से अधिक गुज़र चुका था। कमरे में अँधियारा था। वह खिड़की पर सिर टिकाये गा रही थी। मानो उस खोये प्रेमी को आज अब वह ढूंढ रही हो।

कोई पास आकर बोला "सोई नहीं हो मिसेज़ कान्त! यह गीत कहाँ सीखा है। सुनकर यहाँ आने का लोभ नहीं सँभाल सका। आप माफ करेंगी।"

तब क्या वह प्रेमी आ गया था। अन्यथा मिस्टर पुरी क्यों आते।

मिसेज़ कान्त बहुत भावुक बन गईं। वह फूट-फूट कर रोने लगी। वह क्यों रो रही थी, समझ नहीं सकी।

मिस्टर पुरी उन आँसुओं के उद्‌गम स्थान को पहचानते थे। वे जानते थे कि मिसेज़ कान्त की यह निराशपूर्ण कविता, यह वेग लावेगी। उसे समझाते हुए कहा, "मिसेज़ कान्त।"

आँसू रुक गये थे। वह बच्चोंवाले कुतूहल के साथ, सरलता से बोली,

"तब आप सुनते रहे।"

"समझ मे न आने पर भी इसकी निराशा, हृदय से टकराती गई।"

"ओ, तब तुम मुझे समझाने आये हो।"

"मैं।"

"मैं खुद किसी का इन्तजार कर रही थी।"

"वह कौन है?"

"मैं नहीं जानती।"

"तब फिर....?"

"उस पहाड़ी लड़की का प्रेमी भादों की बरसाती रात में नदी तैर सका। सुबह उसकी लाश नदी के किनारे दूर लगी थी। गीध उस लाश को नोचते रहे। वह लड़की फिर भी दिया जलाकर, आशा लगाये रहती है।"

"तुम क्या उसी का इन्तज़ार कर रही थी?"

"किसका!"

"उसी लड़के का जो नदी में।"

"नहीं, वह तो 'कोई है, जिसे मैं आज तक नहीं जान सकी हू।

तुम उसे जानते हो।"

यह राजकुमारी की क्या सनक थी! मिस्टर पुरी ज़रा डरे किन्तु वह तो कहीं भी कठिन नहीं मिली। उसने कोई तक़रार नहीं की झगड़ा नहीं बढ़ाया। अपने को समर्पित कर दिया। किये रही आनाकानी का विवाद आगे नहीं आया था।

तब वह बोली—"फिर तुम आओगे।"

"हाँ, जब बुलाओगी।"

"मैं हमेशा यही गीत गाकर बुलाऊँगी।"

"तो मैं आऊँगा।"

"आना, आना ज़रूर।"

मिस्टर पुरी चले गये थे। राजकुमारी सँभल गई। सारा तूफा निपट चुका था। असहाय वह पड़ी थी। यह क्या खेल था। तमाश था। उसका भी एक प्रेमी है। वह भी भरी-पूरी है। जब चाहे, उ पहाड़ी लड़की की तरह गीत गाकर बुला लेवेगी। उसके प्रेमी व अपनाने की अवस्था आ गई थी। वह बेबस थी। अपनी लाचारी व सन्तुष्टता का खयाल भी करना चाहिए। यह उसका हक था। य अब खुश हो गई। उसकी वह प्रतीक्षा सफल हो गई थी। उस अपना खोया प्रेमी पा लिया। वह अब सचमुच ठीक हो गई थी अ वह एक नई कविता शुरू करेगी। वह लिखेगी। उसने बत्ती जल ली थी। मेज पर बैठकर न जाने क्या क्या लिखती रही। वहीं मे पर सिर टिका ऊँघते-ऊँघते सो भी गई।

मिसेज़ पुरी कमरे में आकर अवाक् खड़ी रहीं। सोचा, खूब यही हाल रहा, क्या होगा। इस तरह तन्दुरुस्ती कितने दिन चलेगी मेज के पास खड़े होकर देखा, शीर्षक था—उसके प्रति। पुकार

"मिसेज़ कान्त !"

राजकुमारी की नींद नहीं टूटी। वह हिलाकर जगाने लगी। राजकुमारी ने आँखें खोलीं, अनमनी लगी। खूब उसे देखती हुई बोली—"ओफ़ नींद टूट ही गई।"

"क्या रात भर जगी रही हो।"

"कविता लिख रही थी।"

"लिखा तो कुछ है नहीं।"

"वह शीर्षक सोच लिया।"

"वह भाग्यवान् कौन है।"

"चुप।" वह खिलखिलाकर हँस पड़ी।

आज भी वे घूमने निकले थे। वह बहुत परेशान थी। जब मिस्टर पुरी ज़रा पास लगते, वह अपने में कहती—नहीं, नहीं, नहीं; तुम दिन को क्यों दीख पड़ते हो। रात को आना। जब मैं गीत गुनगुनाऊँगी तब आना। दिन को तुम वैसे सुन्दर नहीं लगते हो।

और आधी रात को फिर वही गीत वह गुनगुनाती रही। मिस्टर पुरी आगये थे। वह गुस्से में बोली—"देर से आये।"

"क्या !"

"तुमने नहीं सुना।"

"सुना था। फिर भी बेकार उसको सन्देह क्यों हो। वह अब सोई है।"

"तुम बहुत भले हो।" मिसेज़ कान्त मुस्कराईं।

उस स्वप्न की दुनिया में बनाई कविता एक दिन धोखा दे गई। मिसेज़ कान्त ने अनुमान लगाया कि मैं गर्भवती हो गई हूँ। समाज के आगे, अपने स्वभाव की सारी दुनिया को भूल गई। निराकरण,

अपवाद सहने की सामर्थ्य उसे नहीं थी। वह अब डरी, बहुत भयभीत होना लाजिम था। फिर एक दिन 'पेटेन्ट दवा' की व्यवस्था मिस्टर पुरी ने की और वह एक भारी सामाजिक क़ानूनी जुर्म से बरी हो गई। फिर वह कुछ बीमार रहने लगी थी। स्कूल में बच्चों को देखकर दिल में ख़याल उठता था कि, उसका भी। क्या....वह अपने पर झुंझलाती थी। वह सारा अकर्त्तव्य लगता। कभी कभी छातियाँ मचल उठतीं। वह और उलझ जाती। एक उचाट भी आगया था। वह सोच समझ, लम्बी छुट्टी लेकर, पति के पास चली गई।

एक नये अनुभव और व्यवस्था के बाद वह तन-मन से पति की होकर रही। एक दिन फिर वह गर्भवती हो गई थी। तब एक अज्ञात खुशी ने जीवन में बच्चे के साथ प्रवेश किया। छुट्टी से लौट आने पर उसका दिल बच्चों को देखकर तड़पता नहीं था। वह खुद माँ बनेगी, ऐसा विश्वास उसे था। मिस्टर पुरी फिर भी आते थे। राजकुमारी को इनके इस आने पर एतराज़ नहीं था। प्रेमी के अज्ञात रूप में मध्य रात्रि को बुलाने की गुंजायश कभी नहीं पड़ी।

लड़की एक दिन हुई थी। उसका चेहरा उस टी० बी० वाले लड़के की तरह था। एक बार तो वह सन्न रह गई। सोचा कि, अभी तक क्या उसका वही अज्ञात प्रेमी था। उसी के लिए क्या वह सोचती रहती है। अचैतन्य यह उसका कैसा प्रभाव है। डर फिर भी किसी का नहीं था। वही आँखें, वही चेहरा, वही ठोडी। उस लड़के की साक्षात् छाप का ठप्पा किसी ने लगा दिया था। वह बखूबी पहचान रही थी। उसका प्रभाव उसके जीवन में इतना पैठ गया था कि छुटकारा देने की कोई भी उम्मीद नहीं मिली। उसका अज्ञेय भार अपनाना भी स्वीकार कर लिया गया।

वह एक सुन्दर चाँदनी रात थी। उसकी नींद उचट गई। न जाने क्या सोचकर वह खिड़की के पास खड़ी हुई। वही अपना गीत गुनगुनाना शुरू कर दिया।

वह चौंक उठी ? देखा सामनेवाली कोठी से कोई आ रहा है। वह सिटपिटा गई। फिर भी गाती रही। वह गावेगी, गावेगी, वह वह काली छाया, दरवाजे पर खड़ी हो गई थी। एक खटका हुआ। वह अपने को रोक नहीं सकी। सारी भावुकता, अंग-अंग में फैल चुकी थी। दरवाजा खोलकर मिस्टर पुरी की बाहों में अपने को सौंपती हुई बोली—"तुम मुझे उबारने आये हो न...।"

"क्या राजकुमारी !"

"मैं राजकुमारी हूँ। तुम भी तो राजकुमार हो। मुझे छुटकारा देने आये हो। कहो, तुमने कैसे जाना, कैसे समझा कि मैं दुःखी हूँ।"

"तूने मुझे बुलाया था।"

"बुलाया !"

"गीत गया था न।"

"उफ़, तब तुम आये हो मैंने गीत इसलिए नहीं गया था। तुम आगये ठीक है।"

वह खुद कविता बन गई थी।

अगली सुबह वह फिर अपनी कविता लिखने की सोचने लगी। वह पूरी कहाँ हुई थी। वह न जाने क्या-क्या सोचती रही। वह लिखेगी-लिखेगी। उसका सारा दिल भावुक बना बह रहा था। उस प्रवाह को रोककर वह लिखेगी लिखेगी। वह बैठी रही। मेज पर काग़ज़ और क़लम पड़ी हुई थी।

"क्या सोच रही हो मिसेज कान्त...." मिसेज पुरी आकर बोली।

अचकचाहट में उसने कह दिया। "कुछ नहीं।"

"यह तो वही काग़ज़ है। वही शीर्षक—उसे प्रति!"

"पूरी शायद ही कभी हो।"

"क्या।"

"लिखा नहीं जाता।"

"तब क्यों लिख रही हो।"

"दिल नहीं मानता।"

"कुछ लिखा भी है। ढाई साल से इसे लिए हो।"

"अभी वक्त नहीं आया है।"

"देखूँगी कब वक्त आता है। कह मिसेज पुरी मुस्कराई। मिसेज कान्त चुप रही।

नौकरानी 'बेबी' को ले आई थी।

मिसेज पुरी ने बेबी को ले लिया। उसे पुचकारने और खिलाने लगी। आख़िर मिसेज़ कान्त की ओर इशारा करते कहा—"वह कौन है?"

बेबी ने मिसेज़ कान्त को देखा और कह दिया—छिपकली।

"छिपकली' मिसेज कान्त ने दुहराया।

"आज सुबह से ये यही सिखलाते रहे हैं। बेबी ने सीख लिया।"

मिसेज पुरी चली गई थीं। राजकुमारी ने बेबी को गोदी में लेते पूछा—"मैं कौन हूँ री।"

"छिपकली।" बेबी तुतलाई।

मिसेज कान्त चुप रहीं वह अपने में सोचने लगीं, वह सच ही छिपकली है। अब वह कभी गीत नहीं गायेगी। उसने फिर नहीं गाया।



कबूतरी

म्युनिसिपैलिटी की सड़क पर कोलतार बिछ रहा था। मज़दूर कङ्कड़ों को खोद बड़े-बड़े ब्रुशों से पहले मिट्टी साफ़ करते, फिर कोलतार की तह जमाई जाती। कङ्कड़ बिछ जाने के बाद इञ्जन अपने चौड़े पहियों से उनको कुचलता। सड़क के इधर-उधर कङ्कड़ की ढेरियाँ, तारकोल के पीपे और टोकरियाँ पड़ी थीं। एक ओर हटकर इञ्जन खड़ा हुआ था। आसपास के गाँवों से मज़दूरों के झुण्ड के झुण्ड शहर काम करने आते थे। काम जारी था। कोलतार गरम हो रहा था। बदबू, धुआँ, धूल,

और भारी गरमी के बीच बेहूदा शोर-गुल मचा हुआ था। मज़दूरोंकी टुकड़ियाँ अपने-अपने, अलग-अलग, काम पर मशगूल थीं। भिन्न-भिन्न अवस्था, रूप-रङ्ग और स्वभाव के लोग थे। गुट-मुटे कद की एक साँवली युवती उनके बीच काम करने आई। आज तक कई स्त्रियाँ काम करने आई थीं। वे इन लोगों के बेहूदे मज़ाक और तानों की वजह से एक-एक, दो-दो दिन तक ही काम कर, छोड़-छोड़, चली गई थीं। इस युवती को एक बार कनखियों से सब ने देखा। उसके साँवले रङ्ग और छोटी-छोटी आँखों में न जाने क्या जादू था कि सोखू ने अभी खाँसना शुरू नहीं किया और मुसद्दी भी ठगनी क्या नैना भटकावेवाला गीत गुनगुनाना भूल गया, नहीं किसी ने कव्वालियाँ शुरू की। सरयू ने उसे ख़ूब देखा। उम्र के तक़ाज़े के साथ दिल उसका धड़कने लगा। वह जवान युवती थी।

वह चुपचाप सिर झुकाये काम कर रही थी। मैले, फटे-पुराने, लाल गोटा लगे लँहगे के ऊपर धारीदार कुरता पहने थी। सिर के बाल बिखरे थे। कानों में सस्ते पीतल के बुन्दे थे। सरयू के पास बैठी हुई वह तन्मयता से काम कर रही थी। सरयू का काम से मन उचट गया। वह बार-बार उसे देखता था। किन्तु काम के बाहर उस युवती को कहीं भी फ़ुरसत नहीं थी। एक बार उसका हाथ अनजाने सरयू से छू गया। सरयू की आँखें उससे टकराई। वह फिर काम पर लग गई। सरयू का मन काम से हटता जा रहा था। इसके विपरीत वह काम पर जुटी हुई थी। सरयू उसकी एक-एक बात भाँपता जा रहा था। उन काजल लगी आँखों की ओर भी बार-बार देख, उनको पहचान लेना चाहता था।

दोपहर हो गई थी। उसने दबी आवाज़ में सरयू से पूछा, "पानी कहाँ मिलेगा ?"

सरयू ने उसे देखा। वह उदास उसे लगी। बोला वह, "सामने सड़क के मोड़ पर पानी का बम्बा है।"

उस ओर खूब देखकर वह उठी थी कि सरयू ने टोका, कोरा पानी न पीना, बीमार पड़ जावेगी।" साथ ही उठकर, सड़क के किनारे, पेड़ के नीचे धरी पोटली उसने उठाई और चना-मुरमुरा निकाल कर उसे दे दिया। इन्कार उसने नहीं किया। चुपचाप चबेना चबाती पानी पीने चली गई। सरयू को आज के अपने व्यवहार से बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उसे मोड़ तक जाते खूब देखा और चुप-चुप काम पर लग गया। आज अभी तक किसी ने भी आवाज़ कसनी शुरू नहीं की थी। यह एक नई बात थी। पीछले दो हफ़्ते हुए, एक अधेड़ मज़दूरिन काम करने आई थी। तीन दिन काम कर कर फिर नहीं लौटी। उसका उस तरह चला जाना सबको ही बुरा लगा था। इसी लिए अब वे कुछ सँभल गये थे।

पानी पीकर वह चुप-चाप लौट आई। काम पर फिर लग गई। अब सरयू का साहस बढ़ा। पूछा, "तुम्हारा गाँव कहाँ है?"

"बड़ी दूर।"

"नाम क्या है?"

"मथुरा—पूरब की ओर।"

"तुम यहाँ कब आई हो?"

"आज सुबह। तीन दिन चलना पड़ा।"

"तीन दिन?" सरयू ने आश्चर्य से सवाल किया।

"हाँ।"

फिर कुछ भी बातें नहीं हुई। ठेकेदार के साथ बड़े साहब आये थे। सब काम पर लग गये। वह बार-बार उन लोगों को देखती, मानो वह सब

कोई नये जन्तु थे। साहब के टोप पर उसकी आँखें अटक गईं। सरयू का हाथ झकझोरते उसने पूछा, "वह कौन है?"

"साहब।"

फिर वह नहीं बोली। चुपचाप काम करने लगी। सरयू का दिल काम से हट गया था। वह काम करना चाहता, पर कर कुछ भी नहीं पाता था। दिल के भीरत छटपटाहट शुरू हो गई थी। ज़रा धोके से उसका कोई अङ्ग छू जाता, वह रोमाञ्चित हो उठता। उसे खूब देखता भालता। बार-बार वह सोचता—यह कहाँ से आई। बिलकुल गँवार वह लगती थी। शहर से बड़ी दूर की थी। बाज़ारू चटक मटक उसमें नहीं थी। उसकी सादगी ने उसे मोह लिया था। तीन दिन तक न जाने यह कहाँ-कहाँ मारी-मारी डोलती रही। इसका पति कहाँ होगा। हाथ पर लाख की चूड़ियाँ पहने है। ज़रा साहसकर उसने पूछा, "तेरा नाम क्या है?"

"कबूतरी।" आँखें उठाकर उसने जवाब दिया।

सरयू की कबूतरी से चार आँखें हुईं। वहाँ लाज नहीं थी। आँखें उठकर, उठी रह गईं थीं।

दुपहरी खिल गई। सब मजदूर एक-एक करके साये में, पेड़ों के नीचे, सुस्ताने और खाना खाने चले गये। कबूतरी अभी भी अपने काम पर जुटी थी। सरयू बोला, "काम करके मरेगी, इतनी कड़ी धूप है। चल, खाना खालें।"

"खाना हमारे पास नहीं है।" अनमने भाव से वह बोली। हाथ उसके अपने काम पर ही जुटे थे।

सरयू ने अब समझाया, "भूखे रहना ठीक नहीं। चल, खाना खा लें।"

अनजाने सरयू ने कबूतरी का हाथ पकड़कर उठाया। कबूतरी मना

नहीं कर सकी। उठकर, चुपचाप, पीछे होली। ज़रा हट, जामुन के पेड़ के नीचे, वे दोनों बैठगये। सरयू अपनी पोटली उठालिया। मोटी-मोटी रोटी और आलू का साग था। उसने रोटी निकालकर कबूतरी को दे दी। लोटे में पानी भर लाया। वह चुपचाप खाना खाने लग गई। बड़ी भूखी थी। खा चुकी तो देखा, सरयू ने अपने लिए कुछ भी नहीं बचाया है। सकुचाते हुए पूछा, "तुमने तो कुछ खाया ही नहीं ?"

इसी बीच आलू-मटरवाला उधर से गुज़रा। सरयू ने मटर का पत्ता ले लिया। बचे चने चबाये। कबूतरी कुतूहल से सब कुछ देख रही थी, देखती ही रही। बोली कुछ नहीं।

दोपहर की गरमी में सब मज़दूर इधर-उधर आराम कर रहे थे। कबूतरी की आँखों में भी नींद भरी थी। ऊँघाई आते-आते वह भी सो गई। सरयू को नींद नहीं लगी। उसके दिल में एक अजब कुल-बुलाहट बार-बार उठती थी। शरीर भी भारी थका-थका लग रहा था। उसने पाया, वह साँवला चेहरा, गाल पर एक ओर बड़ा खोट, चेहरे पर शीतला के छोटे-छोटे दाग़। वह चौंका। कबूतरी उसे खूब सुन्दर लगी। वह उसके पास पहुँच रहा था। ज़रा कबूतरी ने अँगड़ाई ली। अपनी उस सुन्दरता को मनुष्य से छुपा लेने के लिए पर्याप्त कपड़ा उसके पास नहीं था। सरयू सब देखकर सहम-सा गया। उससे न रहा गया। पुकारा, "कबूतरी !"

कबूतरी सोई ही थी। मानो कि सुझाती—चुप रहो जी। नींद में दखल न दो। मुझे जगाओ मत। सरयू अपने को पकड़ नहीं सका। आगे बढ़कर झकोरते हुए बोला, "कबूतरी !"

आँखें मलते-मलते कबूतरी ने अँगड़ाई ली। सरयू को देखा, इधर-उधर आँखें फेरी, कुछ टटोला और आलस्य में भरी फिर पड़ रही।

सरयू ने पूछा, "कुछ चाहिए ?"

"पानी" वह बोली।

सरयू ने नल से पानी लाकर दिया। कबूतरी ने मुँह धोकर काफ़ी पी लिया। अब वह बैठ गई। सरयू बीड़ी पी रहा था।

"आज सुबह यहाँ आई हो ?"

"हाँ"

"कहाँ ठहरी हो ?"

"ठेकेदार के यहाँ। उनका बरतन चौका किया करूँगी। वे खाना और पैसा देवेंगे।"

"वह कैसे मिल गये ?"

उसने बताया, सुबह वह आई थी। बड़ी भूख लगी थी। तीन रोज़ से कुछ भी खाया-पिया नहीं था। रात-दिन चली। खाना कहाँ से पाती। लोगों से सुना कि खाना यहाँ नहीं मिलता। पैसा उसके पास था नहीं। ठेकेदार घूमने गया हुआ था। उसने पैसा माँगा। ठेकेदार ने एक रुपया पेशगी दिया। नौकरी भी लगा दी।

कबूतरी ने रुपया निकालकर दिखलाया। सरयू देखकर जल उठा। सोचा कि वह क्या कर सकता है। अपने भीतर कोई रास्ता नहीं सुझाई पड़ा। कुछ सँभलकर वह बोला, "तू ठेकेदार के यहाँ मत जाना। वह भला आदमी नहीं है।"

"तुम ही बताओ, मैं कहाँ जाऊँ ?" आँखें उठाकर कबूतरी उसके मुँह की ओर देखने लगी।

सरयू का खुद का अपना कोई भी डेरा नहीं था। पिता कभी के मर गये थे। माँ भी नहीं थी। एक बेहद चिड़चिड़े स्वभाव की बुआ थी। वहाँ उसे ले नहीं जा सकता था। क्या करेगा, बहुत कुछ सोचकर भी

कुछ तय नहीं कर सका। बुआ के चंडी रूप को सोच वह काँप उठा। आज सुबह अपनी कमाई के चार पैसा माँग लेने पर उसने जो मट्टी पलीद की, उसे सब का सब याद था। बहुत कुछ वह कहती रही। मुहल्ले का लिहाज़ तक उसे नहीं रह गया था।

कबूतरी चुप थी, मानों कि अब उसे कुछ भी कहना नहीं है। सरयू के प्रति उदास वह फिर भी नहीं रह सकी। पूछा, "तुम्हारा नाम?"

"सरयू।"

"कहाँ रहते हो तुम?"

"लाहौरी दरवाज़े के पास, गली में।"

"कौन-कौन हैं तुम्हारे?"

"एक बुआ, बस।"

यह सब पूछकर वह फिर चुप हो रही। सरयू ने अबकी हिम्मत बाँधी। पूछा, "तुम शहर क्यों चली आई।"

"महरवा रोज़-रोज़ मारा करता था। मैं भाग आई। अब थोड़ी पकड़ पावेगा। बड़ी दूर है हमारा गाँव।

काम फिर शुरू हो गया था। वही चहल पहल थी। सरयू कोलतार गरम करने चला गया था। कबूतरी चूप-चाप ज़मीन साफ़ कर रही थी। फ़ुर्सत पा सोखू ज़रा खाँसा था कि सब ने घृणा से उसकी ओर देखा। वह चुप हो गया। सरयू काम करता-करता सोच रहा था। कि कबूतरी ठेकेदार के यहाँ जावेगी। वह कुछ भी नहीं कर सकता। घासी से उसकी दोस्ती है। उसकी बीबी को वह भाभी कहता है। भाभी क्या कबूतरी को अपने यहाँ नहीं रख लेगी। लेकिन घासी तो अब यहाँ काम नहीं करता। वह किसी दुकानदार के साथ फेरी पर जाया करता है। कबूतरी का ठेकेदार के यहाँ जाना ठीक नहीं। वह बुआ के पाँव पड़ेगा।

लेकिन बुआ को तो रहम है ही नहीं। ठेकेदार के प्रति उठती घृणा का उपाय कुछ भी उसकी समझ में नहीं आया।

कबूतरी उसके पास सरक आई। कहा, "तुम अपने घर क्यों नहीं ले चलते?"

दबे हुए स्वर में वह बोला, "मेरा भी अपना घर नहीं है।"

ठेकेदार के मुंशी ने कबूतरी को डाँटा, "ओरी, क्या फुस-फुस लगाये है। काम भी करेगी कि नहीं?

कबूतरी को जैसे काठ मार गया। वह खड़ी की खड़ी रह गई। इतनी कड़ी ज़ुबान कभी भी उसे आज तक किसी ने नहीं कही थी। वह चुप रही। आँखों में पानी भर आया।

फिर मुन्शी बोला, "जा' टोकरी में कङ्कड़ भर ला, जल्दी-जल्दी बिछा। पूरे पचास फेरे किये बगैर छुट्टी नहीं मिलेगी।"

मन ही मन कबूतरी के गुब्बार जमा हो गया था। वह और भी जग गई। बोली, "यह लो अपनी टोकरी और अपना काम। मैं काम नहीं करूँगी। तुम्हारी कोई ज़बरदस्ती और ज़ोर नहीं।"

टोकरी उसने फेंक दी।

मुंशी चिल्लाया, "हरामजादी!"

और कबूतरी पेड़ के नीचे जा खड़ी हुई। धम् से बैठती फिर बोली, "ले, कर ले जो तुझसे होता है?"

मुंशी गुस्सा नहीं रोक, सका। आपे से बाहर हो कबूतरी का हाथ पकड़ उसे मारने बढ़ा। सब मज़दूर इकट्ठा हो गये। उसको घेर लिया। वह एक ओर चला गया। कबूतरी भी अपने काम पर लग गई। कुछ देर बाद सरयू पास आकर बोला, "नौकरी बड़ी कठिन है।"

"तुम्हें होगी। मुझे किसी का डर थोड़े ही।"

सरयू को कोई भी जवाब नहीं सूझा।

कबूतरी फिर बोली, "बदमाश हाथ पकड़ने आया था। दाँत से नाक काट लेती, तब मालूम पड़ता।" चुप-चाप कङ्कड़ टोकरी पर रख मशीन की तरह काम पर जुट गई।

साँझ हो गई थी। मुन्शी आया। मजदूरों की हाज़िरी लिखी। एक-एक कर सब चले गये। उसने कबूतरी से कहा, "चल!"

कबूतरी ने सरयू की ओर देखा। वह चुप-चाप उदास खड़ा था। वह उससे कुछ सुनना चाहती थी। ज़रा इशारा पाते ही उसके साथ चलने को तैयार थी। लेकिन वह चुप था। वह मुंशी के साथ चल पड़ी। सिर फेरकर उसने देखा। चौरस्ते की पुलिया पर सिर झुकाये वह चुप-चाप बैठा था। वह उसे नहीं पा सकती। वह पीछे छूट गया। चारों ओर बड़ी-बड़ी इमारतों और घनी बस्ती के बीच अब वह थी।

वह ठेकेदार के मकान पर पहुँची। आँखे नीची किये वह खड़ी थी। नौकर ने उसे उसकी कोठरी दिखलाई। वह भीतर जाने को थी कि ठेकेदार ने पुकारा, "कबूतरी!"

वह रुक पड़ी। ठेकेदार बोला, "आते ही झगड़ा शुरू कर दिया?"

कबूतरी लाज से भर गई। उसकी शिकायत यहाँ भी पहुँची। सँभलकर फिर बोली, "उसने बात ही ऐसी कही। मेरा क्या कसूर!"

"अच्छा जा..."

वह चली गई। खा-पीकर निश्चिन्त हो लेटी। रात काफ़ी गुज़र चुकी थी। दरवाजे पर खटका हुआ कबूतरी चौंकी। पुकारा, "कौन?" कोई भी उत्तर नहीं मिला।

"कौन—कौन?" डरकर वह बोली।

किसी ने उसका मुँह दबाते हुए कहा, "चुप!"

कबूतरी कुछ पहचानकर बोली, "ठेकेदार बाबू ?"

"हाँ-हाँ," कह ठेकेदार ने उसे अपनी बाहों में समेट लेना चाहा। कबूतरी छटपटाई। कहा, "मुझे छोड़ दो। अरे, यह क्या कर रहे हो। मेरे पेट में......"

ठेकेदार खूब दारू पिये था। कबूतरी को ऊँच-नीच समझाया। वह टस से मस नहीं हुई। आदर्श से परे की चीज़ थी—पेट का बच्चा। उसकी हिफ़ाज़त लाज़िम लगी। झब्बू की माँ कहती थी, ऐसे में बहुत हिफ़ाज़त से रहना चाहिए। कभी-कभी वह बच्चा पेट में चलता लगता था। उसे देखने के लिए वह बहुत लालायित थी। उसके लिए ही तो अपने पति से यह सब झगड़ा उसने मोल लिया।

दारू ठेकेदार को लगी थी। लड़खड़ाता वह आगे बढ़ा। अंधकार में उसे धकेल कबूतरी बाहर निकल आई। मकान के हाते से बाहर चौड़ी सड़क पर पहुँच गई। एक काली छाया उसे अपना पीछा करती मिली। वह भयभीत हुई। एकाएक आवाज़ सुनाई पड़ी, "कबूतरी !"

वह सरयू का स्वर था।

सरयू घर जाकर देर तक सोचता रहा कि क्या करे। उसकी समझ में कोई भी बात नहीं आ रही थी। बुआ सुबह से नाराज़ थी। सरयू ने खाना भी नहीं खाया। कई-कई बातें वह सोच रहा था। काफ़ी रात गुज़र चुकी थी। वह चेता। नींद नहीं आती थी। चुप-चाप उठा। कोठरी से बाहर निकला। ठेकेदार के मकान की ओर बढ़ा ही था कि उसने देखा, कबूतरी उस सुनसान अँधेरे में फाटक से बाहर निकल आई है।

कबूतरी को सहारा मिला। सरयू का हाथ अपने हाथ में ले बोली "मैं भाग आई हूँ।"

दोनों चुप-चाप आगे बढ़ रहे थे। सरयू सोच रहा था, भाभी ज़रूर उन दोनों को अश्रय देगी। कबूतरी की सीधी-सच्ची बातों से उसका दिल पिघल कर कोमल पड़ चुका था। घासी के मकान पर पहुँच उसने धीमे पुकारा। कोई भी जवाब न मिलने पर, डर के मारे, उसने और हल्ला नहीं किया। दोनों पास वाले आम के बाग़ में पहुँचे। बीच बगिया में चौड़े चबूतरे पर बैठ गये। कबूतरी ऊँघते-ऊँघते सो गई। सरयू की आँखें हड़ताल ठाने रहीं। बड़ी देर तक उसने सोई कबूतरी को देखा, देखता रहा।

सुबह कब की खुल चुकी थी। सरयू न जाने कितनी देर तक सोता ही रहा। कबूतरी अलग हटी, चुप-चाप बैठी थी। अब पास आकर बोली, "सरयू।"

दिन बढ़ रहा था। सरयू उसे देखता उठा। अँगड़ाई लेता बोला "चल, तुझे भाभी के पास छोड़ आऊँ।"

"नहीं काम पर चलेंगे।"

"काम पर!" आश्चर्यचकित सरयू बोला।

"हाँ-हाँ, अब किसी का डर थोड़े ही है।"

सरयू को एतराज करने का साहस नहीं हुआ। राह में चलते-चलते कबूतरी ने पूछा, "तू तो मुझे नहीं मारेगा?"

सरयू हँस पड़ा।

वही सड़क। उसी ठेकेदार की मज़दूरी करने वे दोनों पहुँचे। मानों कोई भी बात नहीं हुई हो। काम पर जुटे ही थे कि ठेकेदार आया। कबूतरी को देख जल उठा। गरज कर कड़ी जबान से बोला "तू क्यों आई है, डाइन! क्या रोज़ ही झगड़ती रहेगी!"

सरयू ने बीच से ही टोका, "तुमको दूसरी की बहू-बेटी का भी लिहाज है। पैसे देकर ईमान मोल लेना चाहते हो।"

"बदमाश!" ज़ोर से चपत जड़ते ठेकेदार ने कहा, "तुम दोनों यहाँ से निकल जाओ!"

मज़दूर यह नहीं सह सके। उन्होंने अपना-अपना काम छोड़ दिया। वे काम नहीं करेंगे। ठेकेदार की यह हरकत ठीक उन्हें नहीं लगी। लाचार हो ठेकेदार ने दोनों को काम पर लगाये रखना मन्जूर किया। अपनी नेकनामी और दया का क़ायल बने रहना वह बखूबी जानता था। दिन भर दोनों, दूर-दूर से, एक-दूसरे को देख-देखकर मुस्कराते रहे। सब मज़दूर अपनी जीत पर फूले नहीं समा रहे थे। साथ ही सरयू के साहस पर खुश थे। दोपहर को सबने अपने-अपने हिस्से का थोड़ा-थोड़ा खाना उन दोनों को दिया। साथ ही उन्होंने यह भी तय किया कि कबूतरी के लिए वे लोग कुछ पैसा जमा करेंगे। सरयू की पीठ बहादुरी के लिए ठोंकी गई। सरयू और कबूतरी, दोनों के दोनों, बहुत खुश थे।

संध्या को सरयू कबूतरी को भाभी के घर ले गया। और लोग उसके लिए कुछ थोड़े कपड़े जमा करके ले आये थे। बड़ी देर तक भाभी को सब हाल सुनाकर वह घर लौट आया। देखा, बुआ दरवाजे पर खड़ी है। वह चुप-चाप अन्दर जाना चाहता था। हल्ला मचाते वह बोली, "यहाँ से निकल! वह राँड कहाँ है? तूने तो हम सब की नाक कटवा ली। लुच्चा कहीं का!"

वह चुपचाप अचरज में बाहर खड़ा का खड़ा ही रह गया। अन्दर जाने की हिम्मत नहीं पड़ी। बुआ ने दरवाज़ा बन्द कर लिया। खड़े-खड़े पाँव थक गये। उलझन में वह पड़ा था। आखिर कुछ सोचकर

घासी के घर पहुँचा। सब सो गये थे। बाहर से कबूतरी का दरवाज़ा थपथपाते पुकारा, "कबूतरी!"

वह अभी नहीं सोई थी। आवाज़ पहचान दरवाज़ा खोल दिया। पूछा, "क्या है?"

वह चुप था।

"तुम उदास क्यों हो?"

"बुआ ने घर से निकाल दिया है," वह भारी स्वर से बोला।

"बस, इतनी-सी बात! चलो अन्दर।" कबूतरी ने दरवाज़ा बन्द कर लिया। दोनों चुप रहे। वह फिर बोली, "सो जाओ।" कंबल बिछा, चुपचाप, उसके पास दुबककर खुद भी पड़ रही। रात को कबूतरी की नींद टूटी। देखा, सरयू का हाथ उसकी छाती पर पड़ा है। हाथ उसने हटाया नहीं। चुपचाप वैसे ही पड़ी रही।

अनायास सरयू ने इस चुप को तोड़ा। बोला, "कबूतरी!"

"हाँ।"

"तू मुझसे शादी करेगी?"

कबूतरी अँधयारे में मुस्कराई।

"बोल न, यहाँ परदा किसका है।

"बच्चा हो जाने पर।"

"तब ही सही!"

दोनों चुप रहे। दोनों के हृदय की अज्ञानता और गुदगुदी के बीच बच्चा था। सरयू ने मन ही मन सोचा, बच्चा हमारे बीच क्यों आया है? उसका आना ही सारे झमेले की जड़ है। उसने सुना था कि बच्चे रफ़ा-दफ़ा भी हो जाते हैं। वही वह दोनों कर सकते हैं। वह अब बोला, "सुनेगी तू।"

"बोलो !"

"गुस्सा न होना।"

"गुस्सा मैं कब हुई हूँ ?"

"तब हमारी शादी जल्दी हो जावेगी। बच्चे का होना ठीक बात नहीं। लोग न जाने क्या-क्या कहेंगे।"

कुछ भी न समझ वह चुप रही। प्रश्नसूचक दृष्टि से उसने सरयू को देखा। फिर ज़मीन कुरेदने लगी।

"बच्चे का होना ठीक नहीं," सरयू ने कहना शुरू किया, "एक दवाई आती है, जिससे...."

"ओ राम—पर बचा होगा। तू कहीं और ब्याह कर ले!" कबूतरी ने जवाब देते कहा।

"कबूतरी!"

कबूतरी ने न जाने क्यों रोना शुरू कर दिया था। सरयू ने उसका हाथ फिर उठाया। उसे सहलाते, समझाते बोला, "रो मत।" मन ही मन वह बात गाँठ रहा था कि चुपके से दवा खिला देता। व्यर्थ ही उसने बात कही।

कबूतरी अपने स्वामी से झगड़कर चली आई थी। अब स्वामी के पास पहुँचने की चाह एकाएक जाग उठी। जी में हुआ, वह लौट कर चली जावेगी। यहाँ के लोग उसे पसन्द नहीं। वह ज़रूर चली जावेगी। तभी उसने देखा, अलग हटकर, नङ्गी ज़मीन पर, सरयू सो रहा था। उसने पुकारा, "सरयू!"

कोई भी जवाब न पा, खिसककर, वह उसके पास पहुँची। सोचा, यदि सरयू ने उसे मदद न दी होती तो उसका क्या हाल होता? कौन

किसका ख़याल करता है। परदेस में वही उसका एकमात्र सहारा था। सरयू को हिलाते फिर वह बोली, "ओ सरयू!"

सरयू उठ बैठा। अपने पास, कंबल पर, वह उसे ले आई। रोती हुई बोली, "मुझे बच्चा नहीं चाहिए।"

फूट-फूटकर वह रोने लगी। सरयू अवाक् रह गया।

सरयू की ठोढ़ी पकड़कर उसने कहा, "हम दोनों शादी करेंगे। तू मेरे पास ही रहना। बोलता क्यों नहीं है। हमारी शादी हो गई है। अब हम साथ-साथ रहेंगे।

"कबूतरी!" सरयू गद्गद् हो बोला।

रात भर कबूतरी सरयू से लगी पड़ी रही। खूब गहरी नींद उसे आई। सुबह उठ सरयू बाहर निकला। दरवाज़ा खोल देखा, भाभी खड़ी है। सरयू चुप-चाप खिसकने की सोच रहा था। वह बोली, "दो दिन में ही सारे करतब सीख गये हो।"

शर्म से गड़कर भी सरयू भाग गया।

दिन कटे। रोज़ दोनों काम पर जाते। अब कोई खास बात नहीं लगती थी। जिस दिन दोनों को मज़दूरी मिली, कबूतरी बोली, "कुछ सामान तो ख़रीद लो।"

गृहस्थी का सामान वे ख़रीद लाये। ठेकेदार का गुमाश्ता, कभी-कभी, चुपके कबूतरी का मज़ाक उड़ाया करता। वह चुप रहती। झगड़ा बढ़ाना वह नहीं चाहती थी।

एक दिन कबूतरी काम पर नहीं आई। सरयू ने आकर सुनाया उसके बच्चा हुआ। सब को बड़ा आश्चर्य हुआ। जानते सब थे, फिर भी जैसे अपने को अच्छी तरह समझाने लगे कि कबूतरी के बच्चा

हो सकता था वह ज़रूर हुआ होगा। उस दिन ठेकेदार से कहकर सब मज़दूरों ने जल्दी छुट्टी माँग ली। सब आपस में कितनी बातें, बच्चे और उसकी माँ के बारे में सोच रहे थे। बच्चा न जाने कैसा होगा। उनकी सब बातों में ठीक ठीक जवाब सरयू भी नहीं दे पाता था। इनमें से कुछ तो, बाज़ार से खिलौने, बच्चे के कपड़े वग़ैरह भी ख़रीद लाये थे। घासी की बीबी सब को देखकर हँसी। बोली, "पन्द्रहवें दिन देखने को मिलेगा।"

सरयू को भी देखने की इजाज़त नहीं मिली। रात को सबके सो जाने पर चुपचाप वह अन्दर पहुँचा। देखा कि भाभी भी पास ही सो रही है। बच्चा और कबूतरी चादर ओढ़े सोये थे। कबूतरी की आँखें खुली थीं। सरयू ने भाभी की ओर इशारा किया। कबूतरी के ओठों को हल्के चूम वह बाहर खुशी-खुशी चला आया।

माँ की कमज़ोरी की वजह से बच्चा आठवें महीने ही हुआ था। रोज ही बीमार रहा। एक महीने बाद वह एकाएक मर गया। कबूतरी उस रात खूब रोई। घासी और सरयू बच्चे को गाड़ने ले गये थे। घासी की बीबी भी ऊँघते-ऊँघते गहरी नींद में सो गई थी। कबूतरी को बड़ा दुःख हुआ। उसे अपने पति की याद आई, शादी की और उस ज़िन्दगी की भी। फिर बच्चे का रोना, टुकर-टुकर के देखना। वह बच्चा पिछले दिनों उसका था और अब। इसी बच्चे के लिए एक दिन ठेकेदार से झगड़ी थी और सरयू से भी। सरयू की आँखों में उसने आँसू देखे थे। फावड़ा वह पड़ोस से माँग लाया था। बच्चे को वे अब गाड़ देवेंगे। उसके पति की यही एक याद थी। उसे दुःख ने घेर लिया। कोई समझानेवाला पास नहीं था। सोचा, वह अपने गाँव, पति के पास, जावेगी। उससे माफ़ी माँग लेगी। कहेगी—तुम्हारा बच्चा मर गया।

उद्भ्रान्त हो वह बाहर निकली। चुपचाप चली गई। रास्ते में याद आई, वह खावेगी क्या। उसकी मजदूरी के पैसे ठेकेदार पर बाकी हैं। वह माँग लावेगी। बावली बनी वह ठेकेदार के दरवाजे पर पहुँची। दरवाजा उसने थपथपाया। ठेकेदार रेस में कुछ हार जाने की वजह से अभी तक सोया नहीं था। रेस कोर्स की कमी शराब की बोतलों से बाजी लगाकर निकाल रहा था। खटका सुन वह चौंका। माथे का पसीना पोंछता बाहर आया। देखा, कबूतरी खड़ी है।

आगे बढ़ कबूतरी बोली, "मैं गाँव जा रही हूँ। बच्चा मर गया। बाकी मजदूरी दे दो।"

ठेकेदार ने नशे में भरी उन्मत्त आँखों से एक बार उसे खूब देखा। फिर पूछा, "मर गया!"

कबूतरी ने कुछ भी जवाब नहीं दिया।

नशे में चूर था। उसने दरवाजा बन्द कर दिया। सावधानी से चटखनी लगाई। शक्ति-संचय के लिए कुछ क्षण दरवाजे से टिका खड़ा रहा। लड़खड़ाती टाँगों को सँभाल फिर आगे बढ़ा। अस्तव्यस्त कबूतरी को अपनी छाती से लगाकर बोला, "यहीं तू रह।"

कबूतरी जैसे शून्य में खो गई थी। सब कुछ वह भूलती-भूलती जा रही थी। अपने दुःख में सारी निचुड़ गई थी। ठेकेदार की इच्छा और वासना के आगे, विरोध या पक्ष में, कोई भी तर्क बाकी नहीं रह गया था।

"कबूतरी!"

अब वह बोला। पाँच रुपये उसे दिये। वह बाहर चली आई। चुपके आगे बढ़ गई। पीछे मुड़कर भी उसने नहीं देखा।

आधी रात बीत गई थी। दुनिया चुपके सोई थी। कबूतरी अपने

स्वामी के पास गाँव लौट रही थी। वह आगे बढ़ती चलीगई। आदर्श उसके दिमाग़ से बाहर की चीज़ थी। उसके दिल में ठेकेदार के प्रति कोई बुरी भावना नहीं थी। न ही सरयू की याद अब बाक़ी थी। चौड़ी-चौड़ी सड़कों और गलियों को पार करती, वह अपने गाँव जा रही थी। शहर और वहाँ के लोगों के लिए उसके मन में बुराई नहीं थी। अपने स्वामी के पास जल्दी से जल्दी वह पहुँच जाना चाहती थी। कभी-कभी वह ठेकेदार के दिये पाँच रुपये को, उदय होते सूर्य की लाली में देख, उनकी चमचमाहट पर हँस पड़ती थी।

सच ही, कबूतरी अपने स्वामी के पास गाँव जा रही थी।



हिरन की आँखें

रियासत की छोटी रानी साहिबा शादी के बाद महल में पहुँच भी नहीं पाई थीं कि रास्ते ही में उनको हिस्टीरिया का दौरा आ गया। आखिर वह रंग-महल में पहुँचाई गईं, बाँदियों ने उनको फूलों की सेज पर सुला दिया। राजा साहब ने हनीमून का प्रोग्राम हटा दिया और हाउस की लेडी सार्जन फ़ोन से बुलवाई गई। उसने आकर देखा, इन्जेक्शन दिया और राजा साहब से बातें होने लगीं।

"रास्ते में एकाएक क्या हो गया?"

"कुछ भी नहीं !" राजा साहब बोले, "हमारी 'कार' के जंगल से निकलते ही सामने खेतों में काले हिरनों का एक झुंड दीख पड़ा। रानी उनको देखने के लिए उतर पड़ीं। उसके बाद बेहोश हो गईं थीं।

"कैसे हिरन थे ?"

"सब नर थे। उनके सींगों को देखकर रानी बोली थी, 'कितने सुन्दर हैं ये !' उनका सारा चेहरा गुलाबी पड़ गया था। वह न जाने क्या गुनगुनाती, बड़ी देर तक हिरनों को देखती रह गईं। तब मैं बोला, 'देरी हो रही है।' बड़ी कातरता से उसने मेरी ओर देखा और कार पर ठीक तरह बैठ भी नहीं पाई थी कि छटपटाने लगी, परदे फाड़ने की कोशिश की, दाँत कटकटाये और बेहोश हो गईं।"

लेडी-डाक्टर ने अपने में ही सर हिलाया। मानो वह कोई गंभीर बात सोच रही हो। खुद उसने भी देखा था कि उसके मरीज़ के चेहरे पर एक पीली पपड़ी-सी पड़ गई है। फिर भी एकाएक समझ नहीं आता था कि वह रोग क्यों हो गया। इसके इलाज के ज़रिये से क्या यह बरी रखी गई, अथवा वहाँ दाब-बूझकर रखने की कोशिशों के पीछे इसके 'सेक्स' को अपेक्षित ही गिना गया। यह भी ग़ैर-मुमकिन लगा। उसका अन्दाज़ था कि उसका भीतरी कुमारीत्व चूक और निपट गया है। नारीत्व की बाहरी परछाईं में फ़िलहाल भावुकता भी नज़र नहीं पड़ी। अलावा इसके कोई ऐसा लक्षण भी उसमें नहीं था, सेक्स-प्रदर्शन की जिससे भूल जाहिर हो। उसके शरीर का निष्क्रिय सन्तोष देख वह मन ही मन हँस पड़ी। राजा साहब से बोली, "महारानी भीतर बहुत डर गई हैं। अवस्था बहुत नाजुक है। वैसे कोई चिन्ता की बात नहीं। कम से कम तीन-चार महीने भिन्न-भिन्न प्रयोग के बाद रोग की ठीक व्यवस्था हो सकेगी।"

राजा साहब ने रानी को देखा। वह चुपचाप खड़े रह गये। लेडी-डाक्टर मुस्कराते बोली, "कोई चिन्ता नहीं है।"

राजा साहब स्तम्भित रह गये। इतनी ही नहीं, उस हँसी के भीतरी मजाक को बखूबी पहचान बाहर चले गये। लेडी-डॉक्टर ने उस कमरे के सारे दरवाज़े बन्द कर दिये, परदे खोले और छोटी महारानी के पलँग के पास बैठ गई। कुछ देर तक उसे देखा। उसके शरीर के अङ्ग-अङ्ग की सावधानी से परीक्षा ली। हृदय की गति भांपी। एकाएक महारानी के शरीर पर कँपकँपी फैली और वह होश में आने लगी। रानी ने एकाएक आँखें खोलीं। हड़बड़ी में उठी, अवाक् अपने चारों ओर देखती बोली, "मैं कहाँ हूँ?"

"महल में।"

और वे काले हिरन?"

"काले हिरन!"

"वह आगेवाला क्यों अपनी आँखों से मुझे घूर रहा था?"

"आप क्या कह रही हैं?"

"तुम कौन हो?"

"महल की लेडी डाक्टर।"

"राजा साहब कहाँ हैं?"

"अभी-अभी चले गये।"

"क्या मैं बीमार हूँ?"

"नहीं, सफर की वजह से कुछ कमजोरी आ गई थी। अब आप ठीक हो गई हैं।"

"यह झूठ है। मैं बहुत बीमार हूँ। यह देखो—यहाँ सूजन आ गई है। इसके नीचे दबा मेरा दिल ज़रूरत से ज्यादह धड़कता है।

अभी भी, लगता है, जैसे कोई उसे अपनी भरी हथेली से ढके हो। उस पर दबाव इसी लिए महसूस होता है। और यह देखो, इसमें जीवन नहीं रह गया है। अभी मेरी उम्र सिर्फ बीस साल की है कई बार मैंने अपनी सामर्थ्य को परख लेना चाहा, हमेशा असफल रही। हमारे चारों ओर बड़ी-बड़ी रुकावट रही है। और बावली बनकर, बाथरूम में, घंटों अपने शरीर के भिन्न अङ्गों को देखा करती और जानना चाहती, उसका अस्तित्व किस लिए है। मेरा सारा शरीर फूल उठता, भारी-भारी साँसे आने लगतीं। पानी का फुआरा खोल उसके नीचे लेटजाती। पानी की वे गुनगुनी बूँदें मेरे सारे शरीर को ढक लेतीं। अपनी उस तसल्ली को अपने तक ही मैंने रखा। किसी से कुछ नहीं कहा। और आज........

"आज—क्या हुआ महारानी जी? मैं आपकी नौकर हूँ—आप का हर तरह से ख्याल मुझे करना है। फिर उम्र के लिहाज से भी मैं आप से बड़ी हूँ।"

"जब हम जङ्गल में खड़े थे, उन काले हिरनों को देखकर मैं सिहर उठी। तब से आगेवाले की आँखों में जाने क्या बात थी कि मैं उसकी आँखों की ओर देखती रह गई। उसकी आँखें खाली और भूखी थीं, जैसे मुझे अपने में समा लेना चाहती हों। तभी राजा साहब ने मुझे चुम लिया और मैं.........

चूमने के बाद ही आप बेहोश हो गई थीं?"

"लेकिन वह आगेवाला हिरन मुझे क्यों घूर रहा था?"

"कोई भ्रम होगा।"

"उसकी आँखें जैसे सब सोख लेना चाहती थीं। मैं काँप उठी। इतने में ही राजा साहब..........

"फिर तुम छटपटाई और कार में बेहोश हो गई।"

"छटपटाई थी यह किसने कहा?"

"राजा साहब ने।"

"ठीक बात है। उस चुम्बन के बाद मुझे कुछ ठीक-सा होश नहीं रहा। मेरी आँखों के आगे काला परदा छा गया था। मैंने देखा वे दो आँखें जैसे मेरा पीछा कर रही हैं। मैं भयभीत हो उठी। चुलुलाना चाहती थी, किन्तु राजा साहब ने अपने होठों से मेरा मुंह ढक लिया। और वे दो आँखें मेरे शरीर के चारों ओर चक्कर लगाकर जैसे भीतर बैठ गई हैं ...।"

"क्या?"

"इस वक्त भी वे वहीं हैं। क्या तुम उनको बाहर नहीं निकाल सकती हो? छी-छी, अभी तक अजीब कुलबुलाहट मैं महसूस कर रही हूँ। और हिरन की गन्ध—तुम कुछ नहीं सूँघ रही हो क्या!"

"गन्ध भी महसूस हो रही है! सब एक खयाल है। इस तरह मन कभी डाँवाडोल हो ही जाया करता है। आप को काफ़ी आराम चाहिए।"

"लेकिन डॉक्टर, क्या तुम उन दोनों आँखों को आपरेशन कर निकाल नहीं सकती हो? बड़ी बेचैनी फैल रही है। शरीर की भीतरी कम्पन अजब अकुलाहट पैदा करती है!"

"फिलहाल आराम करें। मैं इस पर विचार करूँगी। न ये बातें व्यर्थ किसी से कही जानी चाहिएँ। बेकार राजा साहब से कहना भी उचित नहीं।"

"महारानी चुप रहीं। लेडी डाक्टर भी चली गई। वह पलँग पर लेटी-की-लेटी ही रही। कई बार भौंचक्की-सी उठ, कमरे से चारों ओर

की सजावट को वह देखती रह जाती। फिर उलझन में हट, पलँग के तकिये के बीच मुँह रख, पड़ रहती।

महारानी का लड़कपन कुछ वैसा महत्त्वपूर्ण नहीं था। बचपन में उसकी दादी उससे छोटे-छोटे हाथ-पाँवों को अपने मुँह में रखकर काटा करती थी। धीरे-धीरे खुद उसे भी अपने हाथ को काटने की आदत पड़ गई। एक बड़ा भाई था, राजकुमार। वह कहीं पढ़ता था। जब कभी आता, कुछ खास उत्साह उसकी बातों से नहीं मिलता था। रूखा, ठीक-ठीक बात नहीं करेगा। उसकी बातों का जवाब नहीं देगा। न उसकी शङ्काओं का समाधान ही वह कर पाता था। तब वह बाहर की हो गई थी। पूछती, "कबूतरी के अण्डे कैसे होते हैं।"

राजकुमार अपनी इन्साइक्लोपीडिया की मोटी किताब के पन्ने पलटकर कहता, "यह उसमें नहीं लिखा है।"

वह फिर पूछती, "क्या पेड़ों की शादी होती है?"

"नहीं।"

"तब वह पीपल के पेड़ पर केले की लता क्यों लिपट गई है।"

"वह जानती थी कि जरूर उनकी शादी हो गई है। यदि न होती, तो भला उसकी बाँदी क्यों यह कहती उसका भाई बुद्धू है कि कुछ भी नहीं जानता। उसे सारी बातें जान लेनी चाहिएँ। कॉलेज में सब पढ़ाई जाती होंगी। और बाँदी तो यह भी कहती थी कि गाय के जब बच्चा होता है, औरतें ही वहाँ जा सकती हैं। यदि आदमी वहाँ पर होगा तो बच्चा नहीं होगा। गाय को शरम लगती है। आदमी का उसे शरम क्यों लगती है? उसके भाई के पास इसका भी जवाब नहीं था। अपनी बुद्धि से भी वह ज्यादा नहीं सोच पाती थी। बाँदी को तो उतना ही कहना था। वह भी दिल बहलाने के किस्से के रूप

में। जब कभी वह रूठ जाया करती थी, मन-बुझाव काफ़ी नहीं होता था। जब उसकी दूसरी बाँदी के लड़का हुआ और दो महीने के बच्चे को लेकर वह महल में आई तो वह भी अपनी माँ के पास खड़ी थी। वह बच्चा कहाँ से आ गया, उसकी कुछ भी समझ में नहीं आया। इतना वह सोचती गई, गाय की बाछी की तरह वह पैदा हुआ होगा। वहाँ किसी भी आदमी को जाने की इजाज़त नहीं मिली होगी। उस दिन साँझ को वह राजकुमार से बोली, "तुमने बेबी देखा?"

"नहीं तो।"

"अच्छा, बतलाओ कि वह कैसे पैदा हो गया है?"

राजकुमार चुप रह गया।

"मैं जानती हूँ।"

"क्या!"

"पहले शादी होती है, फिर बच्चा!"

राजकुमार आश्चर्य में ही डूब रहा।

"तुमने नहीं देखा, वह कुत्ते का जोड़ा! पहले उनकी शादी हुई, थी, फिर कुछ महीने के बाद बच्चे हो गये थे।"

"छै हुए थे।"

"हाँ कुत्तों की शादी हर छठे महीने होती है, आदमी की नहीं।"

• अपनी बहिन की बुद्धिमानी पर सोचता राजकुमार चुप रह जाता था। अधिक विचार भला वह क्या करे। वह तो जैसे उस सारी विद्या का अन्वेषण करना जान गई थी। कभी-कभी सोचती, 'उसके भी बच्चा होगा। पहले शादी होगी। वह अपने पति के साथ रहेगी। किसी को वहाँ जाने की इजाज़त नहीं होगी। लेकिन कुत्ते की शादी में तो एक बड़ा तमाशा हुआ था। सब लोग वहाँ खड़े थे। बाँदियाँ थीं, नौकर

थे। पर नहीं, वह रानी बनेगी। उसको परदा करना होगा। वहाँ कोई नहीं आवेगा। भीतर ही भीतर उसके दिल में हजारों सवाल उठा करते। वह उनको खूब जान लेना चाहती थी। धीरे धीरे वक्त कटता गया। वह अपने भीतरी खिलौनों की शादी करती। लेकिन उसे बड़ी निराशा होती कि वे साथ साथ सोये रहते हैं, फिर भी उनसे बच्चे नहीं होते। उनसे बच्चे क्यों नहीं होते हैं? यदि होते हैं, तो कहाँ होते होंगे? महल में उनको क्या शर्म है? वह तो परदे के भीतर उनको रखती है। कोई भी उन्हें देख नहीं सकता। कोई आदमी भीतो वहाँ नहीं जाता है। उसके भाई तक को उनके पास जाने का हक़ नहीं है। फिर भी बच्चे नहीं होते। वह चाहती है कि वह जो सिपाही गुड्डा है, उसकी अँगरेजी मेम से बच्चा हो और उस छोटे बेबी के लिए तब वह झुलना मँगावेगी। उसके लिए छोटी सी गाड़ी आवेगी। वह अपने भाई को अपनी करतूत दिखलाना चाहती थी। यह भेद किसी से भी उसने नहीं कहा।

दिन कटते जा रहे थे। अपने जीवन के पंद्रहवें साल में वह चल रही थी। तभी एक दिन उसके दूर के रिश्ते का चचेरा भाई, आठ साल बाद, बड़े बड़े इम्तहान इँगलैण्ड, अमरीका, युरोप आदि देशों के पास कर लौट आया था उसकी बातें बड़ी दिलचस्प होती थीं वह न जाने कैसे समझ गई कि वह सब और सारे सवालों के उत्तर देने की सामर्थ रखता है। मन में कितना ही अविश्वास होता, फिर भी एक सुलझी अकुलाहट में वह यह मान लेने को तैयार थी, उसके भीतरी सन्देह, गुड्डे-गुड्डी के बच्चे होने की समस्या, ईंटों के कैसे बच्चे होते हैं, यह सब वह जरूर सीख आया होगा। लेकिन उसके व्यक्तित्व के आगे वह झिझक के मारे कुछ भी पूछ नहीं पाती थी। अपने में बहुत ही अनमनी और असन्तुष्ट रहने लगी।

एक दिन साँझ को वह बाग़ में फ़ुहारे के पास खड़ी थी। देख रही थी कि तितली का जोड़ा उड़ रहा है। तभी उसने आकर पूछा, "क्या सोच रही हो, कौशल्या?"

"कुछ भी नहीं।"

"झूठ बात है। तू तितली की ओर देख रही थी न?"

"तुमने कैसे जान लिया?" उसकी भीतरी बात भी वह मालूम कर लेता है। वह आश्चर्य में रह गई।

"तितलियों में एक विचित्र बात होती है। नरपर एक ऐसी महक होती है कि मादा उससे उन्मत्त हो उसके पास खिंची चली जाती है। अभी अभी वह बड़ा, जो नर है, गुलाब के फूल पर बैठा था। तभी मादा लगाती-लगाती उस फूल के नीचे गिर पड़ी थी। नर ने उसे देखा और उसकी हिफाज़त की। वह होश में आई और फिर दोनों साथ-साथ उड़कर चले गये।

उसने मन ही मन सोचा, यह बिल्कुल नई बात है! अब उनके बच्चे होंगे और फिर""लेकिन उलझन बढ़ती जा रही थी। पूछा, "अब ये कहाँ जायेंगे?"

"कुछ दिन इसी बाग़ में रहेंगे। उसके बाद एक दिन मादा माँ बन जावेगी। नर चला जावेगा।"

"वह कहाँ चला जावेगा?" आश्चर्य से उसने पूछा।

"किसी दूसरे बाग़ में......"

कुछ ठीक-सा न समझकर भी उसने कहा, "अच्छा!"

"और चिड़ियों में भी नर सुन्दर-सुन्दर गाने गाकर मादा को अपने पास बुलाता है। इनके यहाँ यही व्यवहार चलता है।"

वह सब सुनकर अचरज में रह जाती। फिर न जाने क्यों मन में

संकुचित हो रहती। उसने एक दिन कहा, "पशु प्रेम नहीं जानते हैं। उनके यहाँ मनुष्य की तरह निराश प्रेमी नहीं रहा करते है।"

इतना सुन कहती, "ओह, तुम तो बहुत-सी बातें सुना-सुनाकर मुझे डरा दिया करते हो। तब बच्चे एक दूसरे को क्यों प्यार करते हैं। वह फिजूल है ?"

"बिल्कुल बेकार। आगे उससे कुछ भी मतलब नहीं रह जाता।"

उसके प्रभाव के भीतर फैल; हर वक्त उसकी बातों को सुनते-सुनते, उसने न जाने क्या-क्या और कैसी-कैसी नई बातें सीख ली थीं— आदमी क्या है, विज्ञान अब क्या-क्या कर रहा है, दुनिया का नाश कब होगा, पशु-पक्षी और मनुष्य के जीवन में इतना बड़ा अन्तर क्यों है ? वह सुनाता था, वह एक-एक बात को रटती जाती थी।

एक दिन रात को वह चुपचाप चारपाई पर बैठी हुई थी। वह पास आकर बैठ गया। बोला "तुम्हारे पाँव तो बहुत सुन्दर है।"

"क्यों, क्या तुम्हारे नहीं है ?"

"मेरे !" वह चुप हो गया। उसके हाथ की उँगलियों को दाँतों के नीचे रख बोला, "इनको चबा डालने की तबीयत करती है"

वह कुछ नहीं बोली। उसकी ओर देखती ही रह गई। तभी उसने अपने ओठों को उसके ओठों से मिला दिया था।

"तुम्हारे ओंठ तो बहुत गरम हैं," वह बोली, 'बुखार-सा चढ़ रहा है।

"हमेशा ही वह गरम रहते हैं। बहुत-सी बातें मैं मन में सोचता हूँ और वे ओठों पर ही रुक जाती हैं। इसीलिए वे गरम हो जाते हैं।"

"क्या बातें हैं वह ?"

उसके हाथ की कुछ उँगलियाँ उसके कानों को सहलाती-सहलाती उसके गालों को छुने लग गई थीं।

"बतलाओगे नहीं?" वह कुतूहल में बोली।

अपने विशाल बाहुओं में उसने उसे जकड़ लिया था। वह घबड़ाहट में छूटकर चारपाई पर बैठ गई। सारे शरीर में उसके पसीना आ गया था।

कुछ दिन उसका जी ठीक नहीं रहा। फिर एक दिन सुना गया, उसे किसी ने ज़हर देकर मार डाला है। उस बात की तहक़ीक़ात हुई थी। वह बहुत डर गई थी। किसी से भी पूछ-जाँच नहीं की।

लेडी सर्जन ने महारानी की बीमारी के लिए बहुत-सी बातें सोची। कई पुस्तकों को टटोल-टटोल कर देखा। कितनी ही समस्याओं पर विचार करने के बाद महाराज से बोली, 'मेरा ख़याल है कि एक काला हिरन कहीं से मँगवाया जाय।"

"दीवान को हुक्म दिया जावेगा। लेकिन मायके में तो कभी यह रोग नहीं होता था। एकाएक क्या बात हो गई?"

"एकाएक कोई ऐसा धक्का लगा है कि भीतरी नसों में ज़हर फैल गया है। यदि वह बच्चे दानी और 'स्पाइन में फैल गया तो फिर ज़िन्दा रहने की उम्मेद कम है।"

'इन्जेक्शन्स....'

"वह तो मैं ऑर्डर दिलवा चुकी हूँ।"

"जो आप ठीक समझें, मैं क्या कहूँ।"

और एक दिन एक काला हिरन छोटी महारानी के कमरे में लाया गया। उसे एक चमार जाल से पकड़कर लाया था। छोटी महारानी उसे देखकर खिल उठी। पूछा "इसे कौन लाया है?"

"कुछ मालूम नहीं।"

"उसे यहाँ बुलाया जाय।"

रङ्गमहल में आदमियों के जाने की इजाज़त नहीं थी। महारानी का हुक्म फिर भी मान्य था। महारानी ने देखा कि वह चमार का जवान लड़का है—बिलकुल काला, एक फटी-पुरानी लँगोटी पहने। उससे पूछा, "तूने पकड़ा है?"

"हाँ, सरकार।"

"अच्छा, इसे पालो। रोज यहाँ आकर छोड़ जाय करो।" डाक्टरनी ने कहा।

वह लड़का चला गया। रोज छोटी महारानी खिड़की से देखतीं कि वह चमार का लड़का उस हिरन के साथ खेला करता है। सुन्दर, काला-काला हिरन बहुत ही अच्छा लगता था। बड़े ही प्यारे सींग थे उसके। जब कभी वह लड़का कमरे में आता और उसके पीछे-पीछे वह हिरन भी तो यह सोचती, उसके भीतर बैठी वे आँखें जैसे उस लड़के की आँखों में मिल गई हैं। उसकी आँखों में वह उन आँखों को तलाश करना चाहती, कुछ न पाकर, भ्रम समझ, एक ठण्डी उसास भर फिर रह जाती।

एक दिन उसकी बाँदी ने सुनाया, वह लड़का शराब पीकर एक नौकरानी से लड़ पड़ा है। उसे विश्वास नहीं हुआ। पूछा, "नौकरानी से?"

"छेड़खानी कर रहा था? नौकरानी कह रही थी कि वह शराब के नशे में उसे पकड़ना चाहता था।"

"पकड़ना!"

"हाँ, वह बदमाश है।"

उस समय छोटी महारानी चुप रही। अगली सुबह उसने नौकरानी से एक बेंत मँगवाई। जब वह लड़का हिरन लेकर आया उसने पूछा, "तू शराब पीता है?"

"नहीं सरकार!"

"झूठ बोलता है?"

"मैं नहीं पीता!"

"झूठा!" कह उसने बेंत से उसे मारना शुरू कर दिया। बार-बार कहती थी, "ऐसी शरारत करेगा, झूठ बोलेगा—सच बता!"

"सरकार, कल थोड़ी पी थी।"

"पी थी—क्यों पी?" उसके आँसुओं से धुले चेहरे को देख वह सहमी बोली।

"ग़लती हो गई, सरकार! अब ऐसा नहीं होगा।"

"और नौकरानी के साथ?"

"क्या!" भौंचक्का वह रह गया।

"नौकरानी—हाँ-हाँ, नौकरानी!" वह तेजी से बोली।

"वह बदचलन है, मालिक!"

"बदचलन!"

"जब से मैं आया हूँ, हमेशा मुझे फुसलाती और तङ्ग करती है!"

"तुझे तङ्ग करती है?" आश्चर्य से उसने पूछा।

"हाँ!"

"क्या बात है?"

"मालिक, वह बतलाने की बात नहीं!"

"बतला, बदमाश कहीं का!"

"उसकी 'सोखू' से साठ-गाँठ है!"

"तूने कैसे जाना ?"

"मालिक, मैंने एक दिन दोनों को पकड़ लिया था। उसी दिन से वे मुझे मारने की धमकी देते हैं !"

"चला जा !" गुस्से में वह बोली।

उसके चले जाने पर उसे लगा कि सच ही उस हिरन-जैसी, बिलकुल वैसी ही, उस लड़के की आँखें अब हो गई हैं। वह आँखें जैसे कि उसके शरीर से बाहर निकल आईं और वह खाली हो गई है।

अगले दिन सुबह उसने उससे कहा, "देख, शरारत नहीं किया करते हैं। तू मेरा नौकर है। मैं तेरे खिलाफ़ कुछ भी सुनना नहीं चाहती हूँ। वह नौकरानी निकाल दी गई है।"

हिरन को उसने पास बुलाया। वह डर गया। नौकर बोला, "पशु भी ठीक-ठीक पहचानता है। पास आना नहीं चाहता। कल से वह आप से खुश नहीं है, सरकार !"

"क्यों, क्या हुआ है इसे ?"

"इसे डर लगा है कि कहीं आप आज भी मुझे न मारें। इसी लिए सुबह आने को तैयार नहीं हुआ ?"

"क्या कह रहा है तू ?"

"कल मैं खाना नहीं खा सका तो यह भी भूखा रहा। जब मैं पीड़ा से कराहता था, यह भी मेरे पास आ कातर दृष्टि से मुझे देखता, पूछता-सा लगता था, तबीयत अब कैसी है ?"

"तू दवाखाने क्यों नहीं गया ? यह डाक्टर आखिर किस लिए हैं, उनको इतनी तनख्वाह क्यों दी जाती है ?"

"सरकार, मैं शर्म के मारे नहीं गया।"

"शर्म कैसी ?"

"नाहक लोग पूछते कि क्या हुआ ?"

"तब तू शराब क्यों पीता है ?"

"सरकार, वह बहुत अच्छी चीज है ? कल मार खाकर भी मैंने पी थी।"

"कल फिर पी !"

"हाँ, उससे पीड़ा नहीं मालूम पड़ी। सब कुछ भूल गया। नींद भी आ गई।"

"तब देख, मैं भी पिऊँगी !"

"क्या सरकार !"

"मैं भी पिऊँगी ! तू चुपचाप रात को ले आना। किसी को मालूम न हो।"

"लेकिन ?"

"पैसा चाहिए—ले !"

महारानी ने दस का एक नोट उसके सामने फेंक दिया।

आधी रात नौकर पहुँचा। महारानी ने ज़रा-सी पी और मुँह बिनका लिया। फिर कोशिश की। एक-एक घूँट पीने की कोशिश की। बहुत गरम होने लग गया था। उत्तेजित होकर वह बोली, "बहुत गरम हो रहा है। मेरे कपड़े खोल—खोल !"

नौकर भौंचक्का खड़ा रहा।

"बदमाश, देखता ही रहेगा—खोल, खोल !"

"सरकार, आप क्या शोर कर रही हैं ?"

"खोल, खोल !"

वह बेंत ढूँढ़कर ले आई। उसने अपनी साड़ी खोलकर फेंक दी। पेटीकोट खोल डाला, बाडी फाड़ अलग कर दी और बाकी शराब

की बोतल अपने सिर पर उँडेल ली। बेहोश पलँग पर फिर वह पड़ गई। नौकर ने देखा, देखता रहा और.......

आखिर नौकर ने बोतल उठाई। इधर-उधर बिखरी चीज़ें सँभाल-कर रख दीं। महारानी के नग्न शरीर को फिर ठीक तरह ढक बाहर चला आया।

सुबह होने पर लेडी-डाक्टर ने आकर देखा, महारानी बेहोश पड़ी हैं। कमरे में चारों ओर नज़र डाली। लगा, जैसे कोई भारी तूफ़ान आकर गुज़र गया हो। वह सन्न रह गई। तभी एक बाँदी ने आकर सुनाया, 'नमोर का लड़का हिरन के गले को चाकू से काटकर भाग गया है।

◉

फ़ायर ब्रिगेड

आठ साल शादी हुए गुज़र चुके थे। एक लड़का हुआ। उसकी उम्र छः साल की थी। पति मिलिटरी के एक बड़े अफ़सर थे। अलग-अलग कैन्टुनमेन्टों में पल्टन के साथ तबादलों पर ही वह अफसर रहा करते थे। शादी के कुछ दिन बाद तक खूब रोमाँस चला। पत्नी को माँ बनाने में कोई खास दिक्कत और तबालत नहीं उठानी पड़ी। बच्चा होने के बाद पति एक पल्टन के साथ चीन, हांगकांग, चले गये। दो-तीन साल वहाँ रह उन्होंने अन्दाज़ लगाया कि पालतू रोमांस में भारी-

गड़बड़ है—वही रोज़ाना बातें, वही सारा सबक, वे ही पुराने शिकवे और शिकायतें वही-वही नारी-शरीर। पहले जो दिल में एक हिचक थी, हांगकांग के स्वतंत्र वातावरण में वह ग़ायब हो गई। वहाँ सुन्दर वेश्याएँ थीं। और भी बहुत से साधन थे। एक दिन अपने एक साथी के कहने पर वे उनके यहाँ गये।

एक सुन्दर कमरा। कई कोचें बिछी थीं। इधर-उधर, चारों ओर, दरवाज़ों पर परदे पड़े थे। दो लड़कियों ने आगन्तुकों का स्वागत किया। एक ने, जो ज़रा अधेड़ थी, पुकारा, "शोभा!" एक लड़की परदा हटा कमरे में दाखिल हुई। उनको देखकर झिझकी, कुछ शरमा, सकुचाती, धीरे-धीरे आगे बढ़, एक सोफ़े पर बैठ गई।

हिन्दुस्तान में भी इतना रूप है, उसका भी भाव-तोल होता है, यह बातें उसे किसी ने नहीं बतलाई थीं। वहाँ इस चीज़ को पाकर वह दंग रह गया। दिलचस्तगी का यह नज़ारा बड़ा मोहक लगा।

दोनों चुपचाप बैठे थे। वह अधेड़ बोली, "अपने मेहमानों को सँभालो।" फिर चुपचाप, पिछले दरवाज़े से, भीतर खिसक गई।

"आप कुछ पीवेंगे?"

"यहाँ क्या मिलेगा?" मेजर ने कुतूहल से पूछा। कुछ ठीक-ठीक वह न समझ सके कि क्या पीने को मिलेगा।

लेमन, विस्की व कई शराबों के नाम उस लड़की ने गिनाये।

"हाँ," मेजर ने कहा और एक नोट मेज़ पर रखा। लड़की ने घंटी बजाई। नौकर आया। ऊपर 'निजी' कमरा ठीक करने का हुक्म दिया। और इत्मीनान से बैठकर फिर सिगरेट फूँकती रही। नौकर लौट आया। चारों ऊपर कमरे में पहुँच गये। वहाँ बढ़िया शराब व खाने की तश्तरियाँ मेज़ पर लगी थीं। चारों ने खूब पी। बड़ी देर तक उनकी बातें होतीं

रहीं। शोभा ने चुपचाप मेजर के कान मैंन जाने क्या-क्या कहा। वह अचरज में भर गया। उन दोनों के बीच फिर कोई आपसी समझौता हुआ। दूसरी मुस्कराई। फिर वे दोनों शोभा के सोने के कमरे में चले गये।

मेजर ने भारी सन्तुष्टता पाई। उन्होंने अपने विवाह के एक-एक दिन पर सोचा। पत्नी के सारे अंग उन्हें शिथिल मिले। शोभा न अहसान बरतती थी, न कहीं कोई हिचक थी, न उसका कोई अनुरोध था, न रात दिन की वह घरेलू झगड़ोंवाली चैं-पैं ही थी। रात भर मेजर उस लड़की के पास पड़ा रहा। उसके दिल की अस्वस्थता, बेचैनी, अकुलाहट जैसे कि उस नारी-शरीर के भीतर बुझ गई हो। रोज़ाना भिन्न-भिन्न स्वभाव, प्रकृति और कायावाली लड़कियों को पहचान वह भारत लौटा। ठीक राय वह अब नारी पर दे सकता था।

हिल-स्टेशनों, कैन्टुनमेन्टों में रंगीन तितलियों को पकड़नेवाला ज्ञान भी उसे अब हो गया था। किसी के साथ शादी के लिए सम्बन्ध स्थापित करने का मसला, दूसरी के प्रेम-पत्रों का तकाजा, तीसरी को चन्द दिनों के लिए खरीदना—जरूरत के लिए सब सुभीता था। महीनों में कभी-कभी घर की पत्नी से भी वास्ता पड़ता था। वहाँ कुछ नया हाव-भाव और आकर्षण न था, चुपचाप, एक सामाजिक रिश्ते के रूप में, वह अपनी सन्तुष्टता ज़ाहिर करता। पत्नी भी बेवकूफ नहीं थी। वह सब जानती थी। उसके प्रयोगों और अनुभवों को ठीक ठीक पहचानकर भी अधिक झगड़ा करना उसने कभी नहीं चाहा। पति को सहूलियत के साथ निभाया और उसके साथ सही व्यवहार भी बरतती रही।

जीवन की वास्तविकता का एक अनूठा तत्व पत्नी ने एक दिन पाया। सहेलियाँ कहती थीं, 'सिर्फ़ एक लड़का और फ़ुलस्टाप!' पत्नी सम्पन्न घराने की थी। कुछ शिक्षा भी पाई थी और समाज के उस

दर्जे के खान्दान में बचपन कटा था, जो आधुनिक सभ्यता के विकास का क़ायल ही नहीं, उसको पूरा-पूरा मानता भी है। लेकिन एक बच्चे के बाद दूसरे का न होना—इस समस्या को वह कितना ही भुलाना चाहे, पति की कितनी ही हिफ़ाज़त करे....फिर भी भीतर, कभी-कभी, कोई चीज़ पैना डंक मारती, वह उसकी चोट से तिलमिला उठती।

उसके पति, चीन से लौट आने के बाद, एक अजीब रोग के शिकार होकर घर आये। पत्नी को भी इत्मीनान से उसमें हाथ बँटाना पड़ा। वह अनजान थी। कुछ पहले नहीं समझी। जब रोग असह्य होता गया, पेटेन्ट दवाओं से पति उसे ठीक नहीं कर सके, तब शहर की नामी लेडी डॉक्टर की राय ली गई। लेडी डॉक्टर सब हाल सुनकर हँस पड़ी। उसकी अबोधता का मज़ाक उड़ाते आश्वासन देते बोली, रोग वैसे असाध्य नहीं है, फिर भी कम खतरनाक नहीं। बच्चेदानी तक उसका असर पहुँच गया है। शायद आपरेशन करना पड़े। आगे के लिये बच्चा होना अब ख्वाब की चीज है।

सब कुछ सुनने के बाद उसने अपने पति से अधिक जानकारी हासिल करनी उचित नहीं समझी। उसे दुःख हुआ, लेकिन एक समझदार लड़की की तरह उसने उसका ढिंढोरा पीटना भी उचित नहीं समझा। उस स्वार्थ का भी उसे ठीक-ठीक अन्दाज़ लग गया, जिसको लेकर पति उसे अपने इतने निकट लाता था। बीमारी चली, इलाज हुए। ठीक और सुचारु व्यवस्था होने की वजह से वह अच्छी हो गई। पति के व्यवहार में वही पिछला रवैया था, जैसे कि इस छोटी बात के कारण ज्यादह विवाद उठाना ठीक नहीं होगा। पति को उसने अपना विद्रोह कभी नहीं जताया। उन अवारागर्द लड़कियों पर उसे कुछ गुस्सा चढ़ा, जिनसे पतिदेव इतना बड़ा सार्टिफ़िकेट लाये हैं। हाँ, कभी-कभी उस लड़की के

लिए मन में ईर्ष्या भी उदय होती थी; जिसने कि यह रोग उसके पति को दिया था।

पति सबकुछ जानता-समझता था। साल भर में हफ़्ते दो हफ़्ते के लिए घर आता और उस बीच अपने को इतना व्यवहार-कुशल बना लेता कि पत्नी को कुछ भी कहने का मौका न मिलता। पति फिर चला जाता पत्नी को भी कोई ख़ास शिकायत न रह जाती। अपने सतीत्व के सहारे अपने आँचल का छोर पकड़कर वह सन्तोष की साँस लेती। बच्चे और घर का काम-धन्धा करने में इस तरह अपने को जुटा देती कि कहीं कोई कमी महसूस न होती। इसके बाद कभी-कभी तारे भी गिनने पड़ते। जब वह अकेली रहती, सोचती कि पति कहीं मुर्दे की तरह सो रहे होंगे। उनके शरीर को कोई नारी कुचल रही होगी। एक नारी से रोग पाकर भी उन्हें शर्म नहीं लगी। आदान-प्रदान की इस क्रियावाले खेल में उसे बड़ी दिलचस्पी होती जा रही थी। गढ़-गढ़ कर वह सब बातें सोचती रहती। वह भी कभी-कभी चाहती, उसका सारा शरीर कोई कुचल डाले। वह ज़रा भी इन्कार नहीं करेगी।

ऐसे ही वातावरण और बाहरी हलचल में एक दिन मेजर की बुआ के लड़के ने घर में प्रवेश किया। छोटा मोटा क़द, साफ़ सुथरा पहनावा, बनाव-शृङ्गार में दक्ष, सूरत नमकीन। इन सब के अलावा मुसाहिबी करने में भी बड़ा उस्ताद। उसने उसे अच्छी तरह देखा और डर गई कि वह क्यों आया है। पहले भी वह कई बार आया था। इस बार उसका दिल न जाने क्यों भयभीत हो उठा। उससे उसे शर्म नहीं।' जब वह इस घर में आई थी, वह बच्चा था तब से आज तक भारी अन्तर उसमें आ गया था। ठीक ठीक वह उसे जान-समझ लेना चाहती थी।

सुमेश में एक जीवन था। उसकी बातों में एक अजब आकर्षण था। वह अपनी भाभी की सारी बातों का तोल-तोलकर ऐसा जवाब देता कि वह अवाक् रह जाती। लेकिन शहर में आते ही उसका सङ्ग कॉलेज के ऐसे लड़कों से हो गया, जो नगर की गण्यमान्य महिलाओं का आदर करते थे। उनके साथ सुमेश ऐसा मिल गया कि किसी और की फ़िक्र ने उसे नहीं घेरा। भाभी कुछ कहती, वह बात उड़ा जाता, "ऊँह, तुम तो ऐसी ही हो। कल हम वहाँ गये थे। क्या बताऊँ मैं, उसका गाना ऐसा था कि........

"तुम वहाँ मत जाया करो।"

"क्यों?"

"शरीफ़ आदमियों का वहाँ जाना ठीक नहीं।"

"भाई साहब भी तो...?"

"क्या।"

"वाह, उनकी भी उससे दोस्ती है।"

"दोस्ती?"

"वहीं तो वे पड़े रहते हैं। तुमसे बहाना कर दिया, शिकार को गये हैं। बस फिर कार लेकर अपने दोस्तों के साथ दिन रात मज़े उड़ाते हैं।"

"और तुम क्यों जाते हो?"

"वह मुझ पर मरती है।"

"झूठ।"

"सच, देख लो न, अभी यह चिट्ठी आई है।"

"चिट्ठी पढ़कर वह चुप रह गई। सच ही चिट्ठी आई थी। बहुत सी बातें उसने लिखी थीं। वह क्या कहे।

"तब तुम वहाँ जाओगे ?"

"पैसा नहीं है। सिनेमा का आज प्रोग्राम है।"

"अच्छा, मैं पैसा दूँगी।"

दस रुपये का नोट लाकर वह दे गई। सुमेश उस लड़की के साथ सिनेमा गया। बड़ी रात वह लौटा। देखा कि भाभी दरवाजे पर खड़ी हैं। देखते ही उसने पूछा, "अकेले ही आये हो उसे साथ नहीं लाये ?"

"साथ"

"मैं तो समझती थी, वह भी साथ आवेगी।"

"साथ आने को कहती थी, मैंने मना कर दिया। उसके घर जाना भी अनुचित था।"

"यदि तुम्हारा घर होता, ले आते ?"

"जरूर।"

"और यहाँ ?"

"यहाँ वह नहीं आवेगी।"

"अच्छा, तुम उसे बहुत प्यार करते हो ?"

"हाँ भाभी।"

"कैसी है वह—खूब सुन्दर होगी ?"

"हाँ खूब सुन्दर है।"

"और मैं ?"

"तुम भाभी !"

"मैं कहूँ तब तो सिनेमा चलोगे नहीं। घर के भूखे मरें और मुहल्लेवालों की दावत !"

इस पर सुमेश ने जवाब देना जरूरी नहीं समझा। ऐसे मजाकों पर

कहने लगी, मुझे भी वैसी साड़ी ला दो। इसे मेरी मुफ़लिसी का ख़्याल थोड़े ही है।"

"साड़ी माँगी थी। तभी कल नहीं गये ?"

"और आज फिर चिट्ठी लिखकर बुलवाया है। साड़ी का भी ज़िक्र है। अपनी सहेलियों को वह दिखलाना चाहती है, वह किसी से कम नहीं। वह भी जो चाहती है, मिल सकता है।"

"लेकिन सुमेश, इतना रुपया तुमको देने से आखिर फ़ायदा कुछ भी नहीं है। न कोई लिखत, न पढ़त और तुम सब फूँक रहे हो। इस तरह प्रोत्साहन देते रहना भी अनुचित है। दुनिया मुझे ही कहेगी, बावली है। न तुमसे रुपया वापस मिलने की ही कोई उम्मेद है। कभी कोई रोज़गार कर ठिकाने से तो बैठोगे नहीं।"

"रोज़गार—वाह, वही तो पटा रहा हूँ।"

"कैसे ?"

"एक सेठजी बाईजी पर आजकल मर रहे हैं। उनकी एक बड़ी मोटर-कम्पनी है। उनका प्राइवेट-सेक्रेटरी बनने की सोच रहा हूँ। सेठजी समझते हैं, हम लोग बड़े आदमी हैं। एक दिन मैं और वह बैठे हुए थे—एक ही शाल ओढ़े। सेठजी पर इसका बड़ा रोब पड़ा। आजकल सेठजी का ही खेल देख रहा हूँ।"

"क्या तमाशा रहता है ?"

"क्या कहूँ—खुशामद, मिन्नत, रोज़ ही एक न एक चीज़ नई आती है। बाईजी की हर एक फ़रमायश पूरी होती है। सेठजी का क़िस्सा कम दिलचस्प नहीं। हर वक्त धरना दिये बैठे रहते हैं। और बाईजी के नख़रे—कुछ न पूछो। 'आख़िर औरतें इतनी बनाव क्यों करती हैं।'

"अब तो यही कहोगे न !"

"झूठ थोड़े ही कह रहा हूँ। आज बाई जी के सिर में दर्द है, कल तबीयत खराब। सेठ जी के साथ न जाने कितनी और क्या-क्या शिकायतें चलती हैं। बाई जी की हर बात पर वह निछावर हैं। कुछ ऐसा जादू वह करती है कि..."

"मैं भी जादू करना सीखूँगी।"

"क्या भाई साहब को 'भेड़ा' बनाने की ठहराई है !"

"मैं क्या बनाऊँगी। उनके करतब तो मैं ही जानती हूँ।"

"इसी लिए रात-भर तारे गिना करती हो। आदत यह बुरी नहीं है। औरतों को इसे सीखना ही चाहिए।"

"तभी तो दिन-दोपहर आज जा रहे हो ?"

"वह तो दूसरी बात है।"

"क्या बात है ?"

"आज वहाँ कोई नहीं है।"

"तभी दिन-दोपहर में जा रहे हो। स्वार्थ तुम्हारा ही है। मैं भी वैसी बातें करना जानती तो ...?"

"यह बात नहीं। उसकी आँखें इतनी बड़ी-बड़ी हैं कि क्या कहूँ ...."

वह चुप हो रही। सुमेश को रुपया दे दिया उसकी बातों में रुकावट नहीं डालना चाहती। उसका उत्साह वह बनाये हुए थी। यही जैसे उसका जीवन है उसकी बातों के सहारे वह खड़ी हो जाती है। नहीं तो उसके शरीर में प्राण नहीं रह गये हैं। सुमेश के आगे से घर के भीतर का अभाव जैसे पूरा हो गया है। उसका भीतरी विद्रोह भी निचुड़ता जा रहा है। कभी-कभी वह अपने को बिलकुल खाली पाती है। चाहे तो क्या वह सुमेश को रोक नहीं सकती है। सुमेश इस तरह

क्यों जाता है। उसका सब बातें पूछना भी क्या लाजमी रह गया है। इस तरह उसे मदद देकर वह उससे क्या चाहती है।

एक दिन भाभी ने कहा, "वहाँ जाना ठीक नहीं है। तुम क्या नहीं जानते, उस शरीर में कितने ही रोग होते हैं। उनका क्या तुमको डर नहीं है?"

"उनका डर!"

"हाँ उनका इलाज नहीं है।

"लेकिन भाभी?"

"क्यों, क्या है?"

"वह तो कहती है, उसे कोई रोग नहीं है।"

"तब क्या पिछले साल उसे लकवा वैसे ही हो गया था?"

"शराब पीने से।"

"नहीं, पहले कभी उसे सिफलिस जरूर हुई होगी। अब वह रोग यहाँ तक शरीर के भीतर खराबी फैला गया है।"

"सिफलिस!" वह अचरज में रह गया।

"जानते ही हो, वह बजारू औरत है। हर दर्जे के आदमी उसके यहाँ आते-जाते हैं। पैसा उसको चाहिए। उसका यह पेशा है, फिर..."

"यह तो वह भी कहती थी।"

"रोग की वह क्यों कहने लगी?"

"झूठ तो वह बोलेगी नहीं।"

"तब मुझे ही झूठ बोलने से कोई हैसियत तो मिल नहीं जावेगी। मैंने भी सुना है। सच-झूठ कोई परखा तो है नहीं। किताबों में भी यही बातें लिखी हैं।"

सुमेश के दिल में एक वहम उठ खड़ा हुआ। उस दिन उसे वहाँ जाने का साहस नहीं हुआ। अगले दिन वह पहुँचा, उसने उससे सवाल किया, "तुमने झूठ क्यों कहा?"

उसने समझाया कि वह तो कई साल पुरानी बात है। अब वह रोग से बरी है। सन्देह ने फिर उभारा। पूछा, "किसने तुमको बहकाया है?"

"भाभी ने।"

"भाभी—कौन है वह; जिससे पच्चा लड़ाया है। तुम मर्दों की जात ही ऐसी है।"

"पच्चा!"

"नहीं तो खाली झगड़ा करने थोड़े ही यहाँ आते।"

सुमेश ने इत्मीनान से सब बातें समझाकर कहा, "ऐसी ग़लत धारणाएँ मन में बटोर लेना ठीक नहीं।"

"वह चुप हो गई। रात को जब वह लौटकर घर आया, देखा कि भाभी रेडियो सुन रही हैं। पूछा, "अभी तुम सोई नहीं?"

"वही तुम्हारा मन-पसन्द रिकार्ड बज रहा है। लेकिन आज इतनी जल्दी कैसे लौट आये?"

"आज सेठजी दिन से ही जमे हैं। रोज़गार का मामला ठहरा, दूसरों को दिक्कत क्यों हो?"

"यों क्यों नहीं कहते, निकाल दिया है। दरवाज़ा ही नहीं खुला होगा। कौन बहुत दिन पूछता है।"

"झूठ बात है।"

"झूठ-सच मैं क्या जानूँ।"

"वह देखो।"

"क्या है ?"

"यह रूमाल छीनकर लाया हूँ।"

"मुझे तोहफ़ा देने के लिए ?"

"तुमको ?"

"देखूँ, बड़ी महक आ रही है।"

"नहीं-नहीं, यह तुम्हारे काम का नहीं।"

"क्या वह हरिजन है जो छूत लग जावेगी—या रूमालवाली मुझे काट खावेगी !"

"तुम क्या कह रही हो ?"

"कुछ भी नहीं। अच्छा यह रूमाल मुझे दे दो। इसके बदले में दूसरा रूमाल रख लेना।"

"क्या करोगी ?"

"चाहे जो करूँ।"

"फिर भी ?"

"अब तो खूब खुशामद करना सीख गये हो। कह तो दिया कि यह रूमाल मुझे दे दो—चाहे जो करूँ, तुमसे मतलब !"

"लेकिन ?"

"तकरार बढ़ाओगे तो गुस्सा हो जाऊँगी।"

"यह कब से सीख लिया ?"

"रूसना—यह तो बहुत दिनों से जानती थी। इतने दिनों तक न जाने कैसे भूली रह गई।"

"यह गाना तुम्हें पसन्द आया ?"

"मुझे—वाह, जब तुमको और तुम्हारी राजरानी को पसन्द आता

है तो मेरा क्या—मुझे पसन्द करना ही पड़ेगा। मेरा अपना मन ही कहाँ है।"

वह गंभीर बन चली थी। सुमेश चुप-चाप कमरे में जाकर सो रहा। आधी रात किसी ने जगाया, "सुमेश बाबू!"

"कौन?"

"मैं हूँ, न जाने क्यों आज डर लग रहा है। दरवाज़ा बन्द कर दो। बड़ा खराब स्वप्न देखा है।"

सुमेश चुप रहा।

"तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, दरवाज़ा बन्द कर दो। मैं बहुत थक गई हूँ। इतनी बात मानलो, और कुछ नहीं कहूँगी।"

उलझन में सुमेश ने दरवाज़ा बन्द कर लिया। उस अन्धकार में कुछ भी नहीं देख पड़ता था। भाभी कहाँ बैठ गई है, कुछ पता नहीं चला। साँस की आवाज़ आ रही थी। वह खड़ा का खड़ा ही रहा। आखिर वह आगे बढ़ा। पॅलग को टटोला। भाभी के नंगे शरीर का स्पर्श पा एका एक चौंक उठा! बोला, "यह क्या भाभी।"

भाभी चुप थी। सुमेश सतर्क हो उठा। उसका हाथ उस नग्नता से हट गया। भाभी की सिसकियों और फूट-फूटकर रोने की आवाज़ से वह फिर चौंका, "यह क्या—तुम रो रही हो भाभी!"

भाभी के आँसू नहीं रुके। वह हत-बुद्धि हो रहा।

एक घण्टे बाद वह उसे अपना कम्बल उढ़ाकर बाहर लाया। बाहर रोशनी में उसने देखा, वह जैसे बिल्कुल बदल गयी है। वह खुद उसे पहचान नहीं सका। चेहरे पर एक अजीब छाप पड़ी थी।

चलती-फिरती तस्वीरोंकी तरह रोज़ही रंगीन शिकवे और शिकायतें चलतीं। झगड़ा होता। भाभी से उलझकर सुलझना वह जान गया था।

दिल में फिर भी उस बड़ी-बड़ी आँखोंवाली के लिए जाने क्यों तड़पन थी। तीसरे दिन उसके यहाँ पहुँचा। वह उसे देखते ही खिलखिला कर हँस पड़ी। बोली, "मैं जानती हूँ कहाँ रहे। अब तो घर में ही उस्ताद मिल गया है। पकड़ लिया दिल का चोर—नहीं तो चेहरा इतना उतरा हुआ न होता। आखिर यह झिझक किस लिए। मैं जानती थी कि तुम भागोगे नहीं।"

"ठीक है।

उस रात अधिक देर वहाँ नहीं रहा। जल्दी घर लौट आया। भाभी जैसे उसके इन्तजार में ही जाग रही थी। वह बोला, "वह जान गई है, भाभी।

"तब जान लेने दो, मुझे क्या उसका डर है?"

"हाँ, अब कोई डर नहीं।"

इसके बाद फिर कोई बात नहीं हुई। सुमेश के मन में फिर भी न जाने क्यों एक डर बैठता जा रहा था। वह सन्तुष्ट नहीं था।

एक दिन सुबह वह फिर अपनी उस लड़की के पास पहुँचा। बोला "मेरी तबीयत खराब है। न जाने क्या हो गया है?"

"डाक्टर के पास गये थे?"

"हाँ।"

"वे क्या बोले?"

"सिफलिस।"

"सिफलिस!"

"हाँ यही कहा।"

"तब अच्छी बात है। गृहस्थियों में भी औरतों को इसका पालना

करना लाज़िम है। दोस्तों को सार्टिफिकेट देने के लिए यह ज़रूरी है।"

सुमेश परेशान हो गया। यह क्या बात है। तब भाभी—वह किस का विश्वास करे। भारी अकुलाहट उठने लगी। दिल बैठा जा रहा था। दुनिया को मुँह दिखलाने लायक जैसे अब वह नहीं रहा। वह अब ज़िन्दा नहीं रहेगा। यही होगा। भाभी ने उसे धोखा दिया। आखिर में क्या यही वह चाहती थी! इसी लिए क्या वह.........

अगले दिन लोगों ने सुना, सुमेश ने आत्महत्या कर ली है। यह भेद घर से बाहर नहीं पहुँच सका। भाभी ने उसे देखा। उसका चेहरा देखा। भयभीत हो उठी। तब क्या दोष उसका ही था। वही क्या कलंकिनी है। पर नहीं...पुरुष क्या इतने निकम्मे होते हैं कि जरा-सी बात से घबड़ाकर प्राण गँवाना सीख गये हैं। वह रोई, रोई, रोई! आँसू खूब, खूब, खूब बहे। आधी रात को फिर वही पीड़ा। बहुत कुछ सोचने के बाद उसने निश्चय किया, सुमेश एक आग लगा गया है। उसे बुझाने के लिए उसे दूसरा फायर-ब्रिगेड ढूँढ़ना पड़ेगा।

यथार्थवादी रोमांस

"नारी को देखकर एक शारीरिक भूख उठती है। दबोच-मरोड़कर अपने में समा लेना हम उसे चाहते हैं। किन्तु देवता बन दुनिया में कहते यही हैं, नहीं, हमें वह नहीं चाहिए!"

"समाज के कानूनों से बाहर फिर हम जावें भी कैसे!"

"ठीक कहता है तू। लाइन खींचने का रिवाज समाज है। और रात को अकेले में नींद जब नहीं आती, तब दिन भर गली-सड़कों पर चलती-फिरती देखी साड़ियों और तितलियों का एक नग्न खाका खींच,

छेड़खानी के लिए उन नग्न शरीरों को अपने पास उतार, उनके बीच सो जाना ही आदमी ने खूब जाना है।

"नग्न शरीर पाकर!"

"नारी के रूप से ऊपर है उसका शरीर। उस शरीर को ढककर नारी कहाँ तक रखे। पुरुष अधिकार पाते ही उसके सारे शरीर पर कब्ज़ा कर उसे लौटाना नहीं चाहता। बड़ी लुभावनी चीज है वह!"

"इतना ज्ञान, रामू!"

"बात सही है, इंकार दुनिया भले ही करे। सभ्य है, चुपके-चुपके सारी बातों को छिपाना वह जानती है। अन्यथा; नारी को अपने नज़दीक पर, अपने से लगाना लाज़िम हैं—एक को नहीं, कई-कई को।"

"कई-कई को—यह कैसे होगा?"

"ओह, नहीं जानता तू? किराए पर अपने शरीर को देने की व्यवस्था एक दरजे की नारी, समाज के भीतर किये हुए है। दिन में मखौल उड़ाकर भी, रात रात जगकर, उस शरीर की हिफ़ाजत करना लोग जानते हैं!"

भरी बरसात। अँधेरी रात। बरसाती ओढ़े, छाता लगाए, रामू और किशोर एक चौड़ी गली के भीतर बढ़ रहे थे। पानी, पानी, पानी। कीचड़ कीचड़-कीचड़। किनारे की बड़ी-बड़ी नालियों में पानी की आवाज़। किशोर ने पूछा, "कहाँ जा रहे हो रामू?"

"शारदा से घर।"

"कौन शारदा?"

"अरे, नहीं जानता तू? उस दिन ही तो नुमायश में उसे दिखलाया था?"

"जिसके साथ कुत्ता था?"

"हाँ-हाँ, वही।"

"बड़ी सुन्दर लगती थी वह! खूब अपने को सँवारे थी—प्यारी, प्यारी।"

"और सिर्फ पच्चीस रुपये लेकर अपने शरीर को एक रात के लिए वह किराये पर दे देती है।"

"पच्चीस?"

"महँगा सौदा करना वह जानती है। जैसे भवानी, लक्ष्मी तथा और भी कई-कई वहाँ रहती हैं। भाव-मोल करने पर दस, पन्द्रह, बीस में ही या कुछ और कम-ज्यादह लेकर शायद वह राज़ी हो जायँ। सौदा पट सकता है। आनाकानी वहाँ कब है। शारदा तो है होशियार, कम वह फिलहाल लेती ही नहीं है।"

"सिर्फ़ दस-पन्द्रह!"

"यह देकर पूरा अधिकार तुम्हारा हो जाता है। न मन्त्र पढ़कर गाँठ बाँधने की ज़रूरत, न दूल्हा बनकर एक बड़ी बरात ले जाने की। सब बखेड़ा अनुचित लगता है। यह सीधा हिसाब है। ज़िन्दगी से भारी वास्ता रख, एक तूमार बाँधना बेकार ही तो है।"

"एक नई बात तुम यह कह रहे हो।"

"नहीं, तेरा ज्ञान ही अधूरा है। तभी तो यह सब कहना पड़ रहा है। ज्ञानवान बनना तुझे भी जल्दी ही पड़ेगा। पीछे अक़्ल जोड़ लेने की फ़ुरसत कहाँ है! यों वक्त तो कटता ही जाता है। हमारे लिए इन्तज़ार भी उसे नहीं करना है।"

"तब उस शारदा को तो तुम खूब जानते होगे?"

"जानना—हाँ, पहचानता खूब हूँ। नई बात वह कब है! उसके शरीर के एक-एक अङ्ग को टटोलकर अच्छी तरह मैंने जाना है।

वह इंकार करना नहीं जानती। यह सीख-शिक्षा और बात बचपन से उसे मिली है। किसी भी जाने-अनजाने आदमी के पास वह सहूलियत से रात काट लेती है। आदमी का 'टेस्ट' पहचान, सुभीता भी वह उसके लिए बन सकती है। आदमी नया जन्तु उसके लिए नहीं है।"

"यह तुम क्या कह रहे हो रामू? न कोई विचार, न धारणा..."

"खूब; वह भी क्या कोई पींजड़े में बन्द चिड़िया है कि एक मालिक के अधीन रहना ही जाने। उससे ही वास्ता रख, उसी के इर्द-गिर्द, सारी पहचान अपनी फैला दे। गृहस्थी तो लड़कियों को पालतू बनाने का एक भारी जाल है। लड़की की स्वतंत्रता का ख्याल कौन करता है। और एक दिन, घूँघटवाले पींजड़े में बन्दकर, सजा-धजा, उसको एक व्यक्ति के पास सौंप दिया जाता है। गृहस्थी के भीतर से वह देखती है : रात-दिन का होना, मौसमों का बदलना और फिर कोई सुअर की तरह साल भर में एक बच्चा देती है, तो दूसरी दो साल में, कई तीन-तीन, चार-चार साल में। एक गिरोह के बीच अपने को पा, माँ बनने को वह मजबूर हो जाती है। लाचारी में वह फिर क्या करे! असमर्थ होकर एक दिन जब शरीर सौंप ही दिया था, तब रोज़ उसकी हिफाज़त करना भी वह नहीं चाहती।"

"लेकिन शारदा?"

"शारदा—यह तुलना करने का कैसा हथियार तूने लिया है। और यह सब बातें? दुनिया झक्की कहेगी, पागल भी कुछ लोग समझ लें। बड़े मजे की एक बात सुनाऊँगा तुझे। सुन-सुन, याद आ गई है। तू भी क्या कहेगा।

"बसन्ती के घर एक दिन गया था। भीतर जाने को ही था कि

उसकी छोटी लड़की दौड़ी दौड़ी बाहर आई। बोली, 'म-न' अन्दर मत आना। भाभी भंगी हो गई है।"

"बसन्ती—वही तेरी अध्यात्मिक प्रेमिका?" रामू ने पूछा।

"ठीक, वही तो। पति बसन्ती का है। मेरा ख्याल है कि बच्चे के पीछे अब पति की भी उसे....."

"गणना ही आजकल के लड़के करते हैं। उनकी अध्यात्मिक और छायावादी 'हीरोइन' उनको रात-रात परेशान करती हैं। हासिल तो कुछ होता नहीं....."

"लेकिन रामू, रज्जन तो कहता था...."

"क्या कहता था वह—खाक, पत्थर। युवक आहें भरते-भरते टी-बी के शिकार हो जाते हैं और युवतियाँ पहले नलों के दर्द से परेशान हो चीखती-चिल्लाती हैं, और फिर एक दिन हिस्टीरिया की मरीज-घर की आफ़त ही उनको समझ लो।"

"सुन तो ले मेरी बात, रामू। सावित्री ने शादी के बाद एक दिन मौका पाकर, रज्जन को अपना शरीर सौंप दिया था।"

"उचित ही किया था उसने। समझदार वह निकली, पति के बाद उसे भी जगह दे दी। ठीक ही किया।"

"लेकिन रज्जन तो उस दिन मुझसे बोला था, "मेरे दिल की सब आग बुझ गई है। राख मैं हो गया हूँ। वह सारा आकर्षण अब मिट गया है। सावित्री से भी मन उठ गया है। उसके पास जाने को अब तबीयत नहीं करती है।"

"सावित्री भी तो यही चाहती थी। वह उदार थी। बेकार ही उसकी और रज्जन की परेशानी ताजिन्दगी बढ़ती जाती। पहले एक डर था, समाज का। पति के सहारे वह भी मिट गया। और समाज यदि जान

भी लेता, तो वह कर ही क्या सकता था ? तेरी उस हीरोइन का अब क्या हाल है ?"

"बसन्ती का ?"

"हाँ, तेरे दिल की कबकी महारानी का।"

"कुछ न पूछ रामू। गया था उसी दिन, जब भंगी वह बन गई थी। अपने भंगी होने की सारी बात, दरवाज़े के पास से उसने भी सुन ली थी। रुका मैं नहीं, न जाने क्यों लौट आया। एक भारी छी-छी मन के भीतर पैठ घृणा-सी बन गई थी।"

"घृणा तूने मोल ले ली, यों क्यों नहीं कहता ?"

"कल रात बाज़ार में बसन्ती फिर मिली थी। पति साथ थे, और बच्ची भी। पूछा था उसने, 'उस दिन भाग क्यों गये थे ? क्या वह यह सब नहीं जानती थी ? यह बच्ची जब से बसन्ती के पेट में आई है, मैंने उसे जाना है। गौर से मैं भाँपा करता था। औरतो पर आखिर इतनी मजबूरियाँ क्यों हैं ?"

"इसी के सहारे तो आदमी की सारी दया वह पा जाती है। और है ही क्या उनके पास !"

"तू न जाने मुझे क्या समझेगा। जब बसन्ती ने अपनी बच्ची मुझे सौंप दी थी, न जाने क्यों एक भारी गुदगुदी दिल में उठी थी। बसन्ती और उनके पति के शरीर से बना वह छोटा शरीर। लेकिन रामू, बच्ची की आँखें पिता-जैसी भूरी-भूरी क्यों हैं ? बसन्ती की तो बड़ी-बड़ी, काली-काली हैं।"

"शायद तुझे मालूम नहीं किशोर, यह बच्ची बसन्ती के जीवन की एक बड़ी कामना रही होगी। तीसरे या चौथे महीने पेट में जब वह चलने-फिरने लगी होगी, तब न जाने कितनी अजान खुशी उसे नहीं

हुई होगी। पति को भी भूलकर अशेय उस बच्चे पर न जाने क्या-क्या उसने न सोचा होगा। यह है नारी की हालत। इसी के लिए तो सज-धजकर वह खिलौना बनी रहती है। और इसी के लिए, चटकीली-भड़कीली पोशाक पहन, अपनी सेक्स का चैलेञ्ज दे, उसने आदमी को ठगना सीखा है। नारी के शरीर का उपयोग भी तो यही है। इतमीनान से इसी के लिए नारी अपने शरीर को सौंप दिया करती है। पति फिर जो चाहे करे। झगड़ा इस बात के लिए वह नहीं करेगी। अपना यह 'घमण्ड' वह पुरुष को सौंप देती है।"

"रामू, फिर भी तो वह बच्ची अजीब है। पिता की आँखें, बसन्ती के चेहरे की झलक। ऐसा एक 'मिक्सचर' पैदा कर बसन्ती ने न जाने कैसा अजायबघर खोल लेने की ठानी है।"

"अजायबघर!"

"और नहीं तो एक अच्छा-सा लड़का पैदा करती! जानते हो, सावित्री ने क्या कहा था रञ्जन से?"

"रञ्जन से!"

"रञ्जन एक दिन किसी काम से वहाँ गया था। सावित्री अकेली थी। बच्चे की आँखें दुख रही थीं। उसकी वजह से वह कुछ परेशान भी थी। रञ्जन ताँगे से उतरकर भीतर पहुँचा। नौकर से बोला, 'हाल-बाल उतार लेना।' सावित्री उसे देखकर मुरझा गई थी।"

"मुरझा गई थी?"

"बोला था रञ्जन, 'रात को ग्यारह की गाड़ी से जाना है। खाना वगैरह जल्दी दे सको, तो अच्छा है। नहीं तो होटल में खा लूँगा।"

"होटल में ही ठीक होगा,' सावित्री ने कहा था।"

"बेबी को क्या हो गया है?"

"परसों से आँखें दुख रही हैं। वे भी घर पर नहीं हैं। कल शायद दौरे से लौटें।"

"डाक्टर को दिखलाया है?"

"वही आँखों की पेटण्ट लाल दवा मँगवाई है। पहले से कुछ फ़ायदा ही है।"

"और रज्जन ग्यारह की गाड़ी से जाना भूल गया था। कमरे के भीतर सोया था। बार-बार, आध-आध घन्टे बाद, सुनता था कि बेबी रो उठता है। नींद उसे आ नहीं रही थी। एक बार जो सावित्री अपना शरीर दे चुकी थी, उसी शरीर की भूख बार-बार उभर आती थी। तब ही सावित्री सिराहने आकर खड़ी हो गई। अपने उस शरीर को एक बार फिर रज्जन को सौंपकर बोली, 'एक और बेबी चाहिए, तुम्हारी यादगार............"

"मेरी यादगार, सावित्री?"

"पाप मैंने किया है, जानती हूँ।"

"पाप है क्या यह?"

"पति के साथ एक अविश्वास, समाज के प्रति भारी अन्याय।"

"लेकिन कौन यह सब जानता है?"

"न जाने कोई अनुचित बात......"

"बात यदि ग़लत थी तो........"

"क़सूरवार तो मैं ही हूँ। शादी से पहले के दिन याद थोड़े ही होंगे, जब पीछे-पीछे फिरते थे। कब नहीं तुमने यह शरीर माँगा था! और आज आज.......सारी बातें सुन रही हूँ। मैं ही तो हूँ चाण्डालिन, तुम साक्षात् देवता हो!"

"उस भूल को उपाय में ही रहने दो, सावित्री।" रज्जन ने उसके

नग्न शरीर को हल्के-हल्के हाथ से सहलाते कहा था। और सावित्री, पिघल, अपने को भूल गई थी; बेसुध-सी हो गई थी। कहाँ कोई चिन्ता उसे घेरती। किन्तु बेबी की नींद टूट गई। वह जग ही तो पड़ा था। सावधानी से उठकर सावित्री बेबी के पास चली गई।"

"सही बात यह थी किशोर। एक बार अपने शरीर पर अधिकार देकर नारी के अख्तियार में भी बात नहीं रह जाती। पति के पास न होने से यह आकांक्षा एकदम जग उठी होगी।"

"ठीक ही तुम कह रहे हो रामू। रञ्जन ने जान-बूझकर ग्यारह की गाड़ी छूट जाने दी थी। अपनी घड़ी आध घंटे सुस्त कर सावित्री से पूछा था, "क्या बज गया होगा?"

"कमरे में घड़ी देख सावित्री घबराई-सी बोली थी, "साढ़े ग्यारह होने को हैं।"

"न जाने यह घड़ी कैसे सुस्त हो गई?"

सावित्री क्या सब बातें नहीं जानती थी?

"जाने भी दे उस सावित्री की बातें। अपनी वसन्ती की तो सुना।"

"भगिन—उस वसन्ती के घर फिर कहाँ जा पाया हूँ।"

पानी खूब बरस रहा था। दोनों आगे बढ़ रहे थे। कभी-कभी मकान के परनालों से गिरता पानी भारी शब्द कर उठता था। हवा के बड़े-बड़े झोंके भी पानी की बौछारों को अपने में ठहरा देते थे।

"कितनी दूर अब और है, रामू?"

"यही एक मील।"

"वहाँ जाकर तू क्या करेगा?"

"नहीं मालूम है तुझे! यह बताना तो भूल ही गया था।

शारदा को पिछले कई महीनों से, फ़िलहाल, मैं अपनी सम्पत्ति बनाए हूँ। वह मेरी किराए की बीवी है।"

"फिर भी इस आँधी-पानी में···"

"अकेले वह कैसे रहती! आदत नहीं है। आजकल, मेरी वजह से, दुकान में बैठ सौदा करने की भी उसे मनाही है। बात सुनकर हँसेगा तो नहीं?"

"तेरी!"

"हाँ।"

"मुझे भी अब बनावेगा क्या?"

"तब सुन! पिछले मंगल को, सुबह शारदा उठकर बोली, "अब तो मेरे भी एक लड़का होनेवाला है।"

आश्चर्य से मैं बोला, "क्या?"

"तुम्हारा नाम मैं तो एलान करूँगी।"

मैंने कुछ भी जवाब नहीं दिया। बात को समझकर भी कहा नहीं, "हर्ज इसमें क्या है! जो मन में आवे, करना।"

"उस दिन साँझ को मैं परेड में खड़ा 'मैच' देख रहा था। एक ताँगेवाला पास आया। बोला, "आपको बुला रही हैं।"

"कौन?"

"आप जानते तो होंगे शारदाबाई को।"

"और चुपचाप, ताँगेवाले के साथ मैं वहाँ पहुँच गया। शारदा बोली, 'मेरे साथ न . . . . ो। सिर न जाने क्यों चक्कर खा रहा है, दिल भी घबरा रहा है।"

"मैं आनाकानी कैसे करता। मकान पर पहुँचकर उसने कहा, "इन्जेक्शन मैंने लिया है। दवा भी कुछ खानी पड़ेगी। भारी परहेज़"

बरतना पड़ेगा।"

"क्या रोग है?"

"अब तुम्हारी ज़िम्मेदारी हट गई। बाप कहनेवाला पैदा नहीं होगा। नहीं तो तुमको उसे दे देती। इतना स्वार्थ नहीं बटोर सकी।"

"हत्या है यह तो—क़ानून का एक जुर्म!"

"बच्चे के बाद भाव भी तो गिर जाता है। क़ानूनी हो, चाहे गैर-क़ानूनी, निभाना तो पड़ता ही है।"

"लेकिन रामू, एक शारदा ही तो अच्छी है। और तो सब ऐसी ही हैं। भवानी तो, सुना है, टी०बी० उसे हो गया है। लक्ष्मी भी ऐसी ही है। और किशोर, सच तुमसे कह दूँ, शारदा ही सबसे अच्छी मुझे लगी है। कई कई मैंने देख ली हैं।"

"क्यों?"

"शारदा हर एक को अपना पति साबित कर घोषित करने की क्षमता रखती है।"

"कैसे?"

"आदमी के पास ज़रा भी गैर वह नहीं लगती। उस आदमी के ऊपर अपना कोई अधिकार लागू करना उससे दूर की बात है। न कोई शेखी ही वह बघारती है। फुसलाना और चापलूसी करना भी उसने नहीं सीखा है। सच-सच, जितना भी उसका, शरीर और रूप है, सब वह अर्पण कर देती है।"

"और मन?"

"यह न पूछ किशोर! जानता हूँ कुछ लड़कियों को, जो आज पत्नी बनकर भी अपने उत्तरदायित्व को ठीक से नहीं निभा पा रही हैं।

पति के समीप रह, उसी की होना साबित कर, उस समय अपने प्रेमी की ही याद करती, मन में पति को अपने से दूर रखती है।"

"असम्भव है यह।"

"तर्क करना तुझे कभी नहीं आया। शरीर-शरीर का नाता ही तो कोई नाता नहीं है। मन पर पति का अधिकार होना...जानता है तू गायत्री को?"

"अच्छी तरह।"

"लगातार सात महीने तक उसके घर मैं गया। वह जवान थी। हँसी, मज़ाक और चुटकियों के बाद, मुझे अपना शरीर दिखलाकर फुसलाना भी सीख गई थी। मैं वहाँ जाया करता था, मनोविज्ञान की 'स्टडी' करने। भला क्यों और कुछ वास्ता मैं रखता! पर एक दिन अँधियारे में, हल्के मेरे हाथ की उँगली मींजते वह बोली थी, अम्मा की तबीयत खराब है।"

"जल्दी ही अच्छी हो जावेगी।"

"तुम रोज़ इस तरह हमारे घर क्यों आया करते हो?"

"न आया करूँगा।"

"आया करो, लेकिन रोज़ क्यों आते हो, बतला दो!"

मैं कुछ न बोला।

"आज खाकर जाना। कचौड़ी मँगवा दूँगी। नौकर को भेजती हूँ मेरी क़सम है तुमको, जो जाओ।"

"खाना घर ही खा लूँगा।"

"फिर वही बात, अपना अहसान!"

"घर पर बुढ़िया माँ बीमार, पिता अभी आने को नहीं थे। दो मील दूर दूकान पर नौकर उसने भेज दिया था। चुपचाप उस अंधकार

में ही मैं खड़ा था। गायत्री भी पास ही थी। बोलीं, "यों खड़े रहोगे, बनआओगे कुछ नहीं ?"

"क्या बात ?"

"नहीं जानते !" कहकर गायत्री एकाएक गद्‌गद् होकर मुझसे चिपट पड़ी थी। मुझे चूम लिया था। नारी के उस रूप पर सन्न रह, अपने को छुड़ा, बाहर निकला। साइकिल उठा जल्दी 'पैडिल' चलाता भाग आया। कितना बड़ा 'नैतिक डरपोक' निकला मैं !"

"नैतिक डरपोक, रामू !"

"अपने को और कह क्या सकता हूँ। एक लड़की सात महीने से मौका दे, एक दिन रोककर पकड़ लेना चाहे—और मैं भाग आऊँ !"

"समाज की तुमने सोची होगी।"

"यह खयाल तब नहीं था। हाँ, आज यदि गायत्री दीख पड़े तो उसे चीर-फाड़ डालनेवाली हिम्मत रखता हूँ।"

"मुझे विश्वास नहीं है।"

"शारदा से मैंने यह बात कही थी।"

"क्या कहा था उसने ?"

"खूब खूब हँसी।"

"बोली नहीं कुछ ?"

"कहा था, 'मैं यदि गायत्री होती तो तुम भाग नहीं सकते थे।"

"यह कैसे हो सकता है रामू ?"

"शारदा की दलील ठीक थी।"

"तुमने यह बात मान ली ?"

"मैं उस तर्क को सही कह सकता हूँ।"

"क्या कहा था उसने ?"

"यही कि गायत्री का अपने को इस तरह खोलकर रखना गलत था। ज़रा अपने शरीर के किसी अङ्ग को नग्न दिखा, छुपकर भाग जाना यदि वह जानती, तो एक भारी आग सुलगा जाती। वह आग फैलकर एक दिन मुझे ढक लेती मैं लाचार हो जाता। खुद उस गायत्री के शरीर को तब पा लेने की कोशिश करता। गायत्री अनजाने, अस्त व्यस्त, भारी उच्छृङ्खलता के साथ, चुपके कभी मौका तब देती....."

"ठीक कहती थी वह रामू! यही बात मुझ पर लागू हुई है। बसन्ती के घर गया था। सीढ़ियों से ऊपर चढ़ रहा था। वह नहा-कर ऊपर से नीचे उतर रही थी। सीढ़ियों में मुठभेड़ हो गई। एक बनिआयन पहने जल्दी में धोती लपेटे उसका वह बदन मुझे मोह गया। गजब की लगी थी। उसकी शरमाई वे आँखें और पीछे पीठ पर फैले वे बाल, दिल पर फैल गये थे। बड़ी हँसी आती है। आगे उस बसन्ती से कई बार दूर-दूर भाग जाने की बातें हुई थीं। जब एक राजी होता था, तो दूसरा मुकर जाता था। हिम्मत ही कब पड़ी! क्या होता नहीं तो?"

"किशोर, कुछ भी अनुचित नहीं है इस दुनिया में। इसी लिए तो सब के साथ चलना मैं सीख गया हूँ! ओम को तो तू जानता है। वही, जो पिछले साल मुन्सिफ हुआ है। वह भी दोस्त और उसकी बीवी पार्वती भी। पार्वती को दोस्त इसलिए कह रहा हूँ कि कभी मुझसे मोहब्बत करने का दम वह भरती थी। दूर ही रहकर मैंने खालिस-सा उसे प्यार किया है। चाय का मैं बहुत आदी हूँ। बिना उसके अब नहीं चला जाता। एक दिन ऐसे ही घूमते-घूमते दूर निकल गया। तब ही चाय पीने का सवाल मन में उठा। सिविल लाइन्स में कोई रेस्तोराँ तो था नहीं कि समस्या सुलझ जाती। और मैंने देखा कि

एक बँगले के फाटक पर सामने ही ओम के नाम की तख्ती लटकी थी।

"मुझे बड़ी तसल्ली हुई। भीतर मैं बढ़ गया। पार्वती देखकर खिल उठी। ओम ने भी वही पुराना तकाज़ा दोहराया—"कभी-कभी तो इधर आया करो, महीनों में आते हो?"

मैं, बोला "चाय पिलाओगे?"

"पार्वती कुर्सी से उठकर कमरे के बाहर चली गई। सकपकाती-सी कुछ देर में आकर बोली, "ज़रा ठहरिए, चाय अभी तैयार हो रही है।" और फिर बाहर चली गई।

"मैं कमरे में टँगी तस्वीरें देखने लगा। ओम सोफ़ा पर लेटा हुआ था। कई अच्छे-अच्छे पेन्टिङ्ग लगे हुए थे। देखते-देखते दरवाज़े के पास वाले पेंटिंग पर पहुँचा था कि नौकर की आवाज़ दालान से सुनी, 'बहूजी, दूध का मिलना तो मुश्किल हो गया है। सब जगह ढूँढ़ आया।'

"मैं कुर्सी पर चुपचाप बैठ गया था। सिगार मेज़ पर से उठाकर सुलगा लिया। कुछ देर बाद चाय आई और साथ ही पार्वती भी। हल्का दूध का रंग चाय में था। दो प्याले मैंने पिये, कुछ नमकीन और फल भी खाये। बाहर हाथ धोने को गुसलखाने की ओर गया। देखा, नौकर दूध निकालने के लिए काँच का—फैशनेबुल—युवतियाँ अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जिसे इस्तेमाल करती हैं—धो रहा था। समझ गया, चाय बनी और कैसे बनी। फिर भी दिल में आज 'कालिख' के अलावा गायत्री को और कुछ नहीं समझता हूँ।"

"क्या कहा रामू?"

"दुनिया भी विचित्र है ! मोहन को तू शायद नहीं जानता ! एक लड़की की हत्या का भार उस पर है।"

"मोहन ने हत्या की ?"

"तेरी तरह कलाकारोंवाली हत्या नहीं। जैसे कि स्कीम बना कहता फिरता है कि किसी दिन नुमाइश में जाकर एक छुरी खरीद अठारह से बीस साल तक की उम्रवाली सब लड़कियों की छाती में भोंक आवेगा.... इतने खूनों के बदले फाँसी ही तो होगी।"

"तुम भी तो यही कहते थे कि उन लड़कियों के दम तोड़ने से पहले आखिरी नजर से एक बार उन्हें देख लोगे।"

"वह तो बहकाया था तुझे। उतनी सब लड़कियाँ, भारी आखिरी नजर के मुझे देख आँखें मूँद लेतीं, तो शायद मैं डर जाता ....

"और वह मोहन की बात ?"

"बिल्कुल नया काम्प्लक्स है। उसकी एक लड़की से आध्यात्मिक दोस्ती थी। पास मुहल्ले में दोनों रहा करते थे। घरवालों का आपस में खूब आना जाना था। दोनों के बीच मजाक चलता जाता था। किसी को कहीं कोई एतराज भी नहीं था। एक दिन न जाने क्यों मोहन का दिमाग खराब हो गया। उस लड़की ने भी कोई आनाकानी नहीं की लेकिन फिर अलग छिटककर वह खड़ी हो गई और फूट-फूटकर रोने लगी। पूछा था मोहन ने, "क्या बात है विमला ?"

"वह चुप।"

"मोहन अवाक् रह गया था। भारी सिसकियाँ वह ले रही थी।"

"विमला—विमला !" बोला था मोहन।

फिर भी वह चुप ही रही। बड़ी देर बाद बोली थी वह, 'यही तुम

चाहते थे मोहन। इतने दिनों का हमारा साथ क्या यहीं पर निपट जाना था, तुम तो पुरुष थे।"

मोहन अवाक् रह गया।

"पुरुष ही थे तुम, यही था सब कुछ क्या। ओफ़, कितनी भूल में थे हम दोनों, यह अविश्वास..."

"अगले दिन उस लड़की ने आत्म-हत्या कर ली थी। वह भेद मोहन की समझ में आज तक नहीं आया।"

"और रामू, लक्ष्मी कैसी है?"

"बड़ी जिद्दी, हठी, बातूनी और रात भर नाक उसकी बजती रहती है।"

[एक 'मौरलिस्ट' दोस्त ने आखरी सब पन्ने फाड़ डाले, फिर स्मृति भी खोगई। इस अधूरेपन में ही फ़िलहाल सन्तोष कीजिए।]



एस्पिरीन की टेबलेट

"एस्पिरीन की टेबलेट को तुम जानते हो ?"

"कौन टेबलेट ?"

"अरे वही लीला—ठेकेदार की बीबी !"

"नहीं मुझे इसका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।"

"और चटर्जी बाबू को ?"

"हाँ, उन्हें पहचानता हूँ—वैसे कोई खास जान-पहचान नहीं।"

बात यहीं समाप्त नहीं होती। लीला जैसे पब्लिक-प्रापर्टी बन गई

थी। बढ़-बढ़कर सब बातें करते थे—बिना किसी झिझक के। किसी बाज़ारू औरत को लेकर भी वह शायद इतना आगे न बढ़ते—बढ़ते भी तो दामन सँभालकर, दाएँ बाएँ नज़र डालकर। लेकिन यहाँ रास्ता साफ़ था। सुनाई पड़ता, "तुम उसके घर गये हो?"

"कभी ऐसा मौका नहीं आया!"

"अरे वाह, तुम भी यों ही रहे। वहाँ ज़रूर जाओ!"

स्वागत के लिए जैसे उसका दरवाज़ा हमेशा खुला रहता है!

लीला ने अपनी गृहस्थी का दरवाज़ा खोलने में कभी हिचकिचाहट पैदा नहीं की। वह उस दर्जे की नारी नहीं थी कि अपने किसी भी 'ईत्व' का सार्टीफ़िकेट पेशकर छुटकारा पा जाना चाहे। बैकडोर उसकी गृहस्थी में नहीं था। तीन साल के बच्चे की वह माँ थी। बच्चे होने के बाद वह बहुत बीमार रही और डाक्टरों ने साबित कर दिया था कि अब वह माँ नहीं बन सकेगी। रोगिणी रहने के बाद, काफ़ी पहरेज करत, नियमपूर्वक रह, उसका सारा सौन्दर्य निखर आया था। आज भी वह कुमारी सी लगती थी।

पति ठेकेदार थे—साधारण अच्छा घर, खासी आमदनी, पति-पत्नी के सारे शौक़ पूरे हो जाते थे। शराब पीने की उन्हें लत पड़ गई थी। रोज होटलों में दावत उड़ती, वेश्याओं के साथ रंगरलियाँ रहतीं। शहर के आवारागर्दों का सारा गिरोह उनकी चापलूसी में लगा रहता था। मुँह पर वाह-वाह, पीठ फिरते ही.......ठेकेदार से अधिक लीला के चरित्र का बखान!

लीला और उसकी गृहस्थी—ग़रीब माता-पिता की लड़की एक दिन, इस गृहस्थी में, नव वधू बनकर, आई थी। पति था, रुपया था और सब ऐश-आराम भी साथ-साथ था। पति ने हर तरह से पत्नी का साथ

दिया। शराब पीने की लत थी, साथ ही पत्नी के साथ पूरा-पूरा लगाव रखने का भी खयाल था। पत्नी पहले तो नशे में झूमते पति को पाकर बहुत भयभीत हो जाती, काँप-काँप उठती, घण्टों अकेले-अकेले रोती, उपाय फिर भी न निकाल पाती। इस घर में उसे रहना है, जानकर पति के लिए सहूलियत बरतती गई और धीरे-धीरे उस घर में रहने की आदत पड़ गई। पति के पिशाच-रूप की जो मूर्ति उसके हृदय पर अङ्कित हो गई थी, वह धीरे-धीरे धुँधली ज़रूर पड़ गई, लेकिन रह-रह कर, जब-तब, उभर आती थी। अन्यथा अब उसे पति की उस क्रीड़ा में एक सुख और आनन्द भी मिलने लगा था।

जीवन चलता गया। पति की आवारागर्दी कम नहीं हुई। एक दिन उसने बड़े आश्चर्य के साथ देखा, पति और उसके कोई दोस्त नीचे कमरे में बैठे हैं। वह कभी नहीं जाया करती थी। उस दिन नीचे अचानक पहुँची। देखा कि पतिदेव किसी लड़की के साथ शराब पी रहे हैं। वह सन्न रह गई। उसे चक्कर आ गया। वह वहीं, सीढ़ी पर, दीवार के सहारे टिक गई। जब होश आया, चुपके ऊपर पहुँची। वह जान गई कि वह लड़की वेश्या है। पति उसका आलिंगन कर रहे थे। भारी-छी छी उसके दिल में हुई। सवाल उठा कि वह मायके चली जावेगी, लेकिन तब तो स्वतंत्रता और भी बढ़ जावेगी। उसे इस गृहस्थी में ही रहना है।

वह चुपचाप सो गई। आधी रात उसकी नींद टूटी। वह सन्न रह गई। कोई अँधियारे में खड़ा था। शराब की महक चल रही थी। उसने आँखें मूँद ली। भारी झिझक मन में उठी। गुस्से के मारे कुछ बोल नहीं सकी। स्पर्श-वैचित्र्य पा वह चौंकी। कौतुक और आश्चर्य भी हुआ। कुछ समझ न आई। आशङ्कित हो उठी—पति तो यह निश्चय ही नहीं है। साहस बटोर बोली, "कौन हो तुम?"

"मैं....मैं....हूँ आदमी।"

"यह तो जाना, लेकिन यहाँ कैसे आये?"

"ठीकेदार साहब का यही काम है।"

उसे बड़ा गुस्सा चढ़ रहा था। क्या क़सूर उसने किया है! वह पास पड़ा व्यक्ति क्यों आया? सारा नारी-विद्रोह उठ रहा था। वह उसके शरीर को अभी भी सहला रहा था। वह कमज़ोर पड़ती गई। पति के इस अकर्त्तव्य के लिए वह नाखुश थी। सारा विद्रोह पिघलता चला गया, उसाँसें चढ़ गईं, अपने भाग्य पर फूट-फूटकर वह रोने लगी। आँसू पोंछते हुए उसने कहा, "यह क्या कर रही हो, लोग क्या समझेंगे?"

"लोग!" वह रोवेगी, रोवेगी। लोग कहाँ हैं? एक उसका छोटा नौकर है। वह छोकरा न जाने कहाँ सो रहा होगा। पर उसने अपने को सँभाल लिया। पूछा, "वे कहाँ है?"

"नीचे।"

"और वह?"

"दोनों साथ हैं।"

वह सन्न रह गई। यह पुरुष क्या है? इसका यह कैसा व्यवहार है? उसे अपना शरीर दे, अब वह उसे कह क्या सकती थी? तब वह बोला, "तुम कुछ समझाती नहीं हो?"

वह क्या समझावे। वे समझेंगे थोड़े ही।

"ओह, यह बात है। मैं देखते ही पहचान गया था कि तुम भी ऐसी ही होगी। जिनके पति का चरित्र ठीक नहीं होता, उनके घर में क्या खाली रहती हैं।"

उसे पुरुषों पर बहुत गुस्सा चढ़ा। इनका यह क्या कहना है। अनजाने उसे परास्त करके भी अपनी बड़ाई बखानेंगे। अब तो वही ओछी है, मजबूर है। इसीलिए सब सुनना पड़ रहा है। नहीं तो किसी की क्या हिम्मत थी कि कुछ कहता। जब अपना ही सिक्का खोटा है, मुहल्लेवाले क्यों न कहें।

वह कह रहा था, "किसी और से भी पक्की साठ-गाँठ है? मुहल्ले में ही होना ठीक होता है। जब खाली वक्त मिले, आ सकता है।"

वह गुस्सा होकर बोली, "चुप रहो!"

कहने को कहा, पर वह अपने आलिंगन में उसे अभी भी समेटे हुए था। छुटकारा नहीं मिला। वह वैसे ही पड़ी रही उसकी सब-सब सुनेगी। वह जो कहेगा, सुनेगी। हल्ला नहीं कर सकती, नहीं करेगी। अच्छी तरह उसे सब समझ लेना है।

वह बोला, "मैं तो कल चला जाऊँगा। देखो, फिर कब आना हो। 'क' के ठेके पर मैं काम करता हूँ। अब तो आना हो गया।"

वह झुँझला उठी। एक दिन आकर यह जाल बिछाया है—यह कैसा धन्धा है! पति है, उनसे भी वह परेशान है। भीतर बैठी पति की पिशाच-मूर्ति भी इस वक्त हट गई थी। वह कुछ अपने में नहीं थी।

"तब दोस्त के बारे में नहीं बोलोगी?"

"दोस्त!"

"हाँ, आजकल कौन है?"

"कोई नहीं।"

"झूठ!"

"और तुम लोग...?"

"हमारा क्या—अलग-अलग शहरों में जाना पड़ता है। कुछ ऐसा

ही काम है। हर एक शहर में इन्तज़ाम रहता है। कहीं लड़कियाँ हैं, कहीं गृहस्थनियाँ, नहीं तो फिर बाज़ारू औरतें हैं।"

उसका सारा बदन सिहर उठा। वह तिलमिला उठी। गुस्सा बहुत चढ़ गया। उसने ज़ोर से एक चाँटा जड़ते हुए कठोर पड़ते कहा, "तुम फिर यहाँ क्यों आये?"

हमला अचानक हुआ। उसे कब यह उम्मेद थी। वह खुद भी आश्चर्य में पड़ गई। ये लोग कैसे हैं। उनको यही काम क्या बाकी है। वह कोई बुरी औरत थोड़ी है कि यह सब बातें सुने। कुछ निश्चित हो वह बोली, "तुम्हारी बीवी है?"

"यह बेवकूफी नहीं की।"

"ओफ!" कह वह मुरझा गई।

यह सारा तमाशा उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। वह क्या जानना चाहती है। यह क्या हो गया है। क्यों नहीं पति सब ख्याल रखते हैं। शराब है, तवायफें हैं, अपने ऐश-आराम से उनको मतलब हैं। वही इसके लिए जिम्मेवार हैं। वह कुछ भी नहीं जानती थी। यह क्या अनर्थ आज हो गया?

चुपके-चुपके उठकर वह व्यक्ति चला गया। वह उसी तरह पड़ी रही। उसके शरीर के कई अंग नग्न थे। भीतर दिल में एक अज्ञात डर भरता जा रहा था। यह बात ऐसी हो पड़ी थी कि वह भले ही अपने को कसूरवार नहीं माने, फिर भी अनहोनी बात थी। यह वह पहले कब जानती थी। वह उठी, लालटेन जलाई। सारा शरीर अभी तक काँप रहा था। वह अपने में नहीं थी। उठकर आइने के आगे जा खड़ी हुई। उसका चेहरा सुस्त पड़ गया था। शरीर में भारी थकान महसूस हो रही थी। बाल बिखरे हुए थे। बड़ी देर तक शीशे में वह अपना चेहरा देखती

रही। आँखों से उसकी आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदें टपक पड़ीं। वह लुटी-सी खड़ी रही। बहुत देर तक खड़े रहने के बाद उसके मन ने गवाही दी, वह कसूरवार नहीं, पति का ही दोष है। अब वह सब कुछ जान गई है। उसने सब कपड़े बदल डाले, मुँह धोया, बाल सँवारे, फिर बिस्तर पर लेट गई। पर चैन नहीं पड़ी। कमरा चारों ओर से काट खाने को दौड़ रहा था। उस अँधियारे में कुछ भी नज़र नहीं पड़ता था। वह भय से न जाने क्यों काँप रही थी। तभी एक खटका हुआ। वह चौकन्नी हो उठी। पूछा, "कौन"?

"मैं हूँ।" पति का स्वर था।

"अब आ रहे हो?"

"मुझे नीचे नींद आ गई थी।"

"और आपके दोस्त?"

"नीचे खर्राटे भर रहा है।"

"अकेले!"

वह अचकचाया। एकाएक कुछ बोल न सका।

"वहाँ कोई और है?" दृढ़ स्वर में वह बोली, "क्या इस तरह घर गृहस्थी में.........?"

"मैं क्या करता, वह ले आया। कुछ यह पेशा ही ऐसा है कि मना नहीं कर सकता।"

"यों क्यों नहीं कहते कि दोनों एक से हो।"

लीला का गुस्सा उतर चुका था। यह लोग औरों को ही दोष देना जानते हैं। उसने फिर कहा, "आगे से ऐसा करोगे तो मैं मायके चली जाऊँगी।" जैसे कि बहुत रूठी हुई है। पति चुप रहे। पत्नी की सारी उम्मीदें जैसे कि जानते हों। एक चुम्बन उसका लिया। पत्नी कुनमुनाती

रही। पति अब उस सारे अनमने और खोये नारीत्व को फिर ले आए। पत्नी में जीवन भरता जा रहा था। कहीं डर और भय नहीं रहा। वह पति से सटी, लगी, चिपकी रही—जैसे कि पति एक बड़ा आधार हो और वह उसे छोड़ नहीं सकेगी। वहीं रहेगी। आजीवन वही उसकी एक मात्र जगह है। इसके लिए वह झगड़ा नहीं चाहती, किसी से करेगी भी नहीं। वह उसका अपना है। इसी के लिए तो वह पति से रूठा करती है।

पति को झपकी आ गई। पत्नी को नींद फिर भी नहीं आई। अभी कुछ देर पहिले एक नाटक हो गया था। क्या वह एक भूल थी, जिस की अवज्ञा, असमर्थ हो, वह नहीं कर सकी थी। वह मुकाबला करने का क्या हथियार उसने लिया है। पति कितने अनजान हैं। वह कौन है, वह कुछ नहीं जानती। शायद वह उसे पहचान भी नहीं सकेगी। ठीक तरह नीचे कमरे में चेहरा कहाँ देखा था, ऊपर निपट अन्धकार में भी वह कुछ जान नहीं पाई थी। और अब वह नीचे चला गया है। वह लड़की कहाँ होगी।

कुतूहल वह नहीं रोक सकी। चुपचाप उठी। पति सो रहे थे। दियासलाई की डिबिया ली। सीढ़ियों से सावधान हो नीचे उतरी। चुपके-चुपके दरवाजे पर पहुँची। दियासलाई की एक सींक जला कर देखा, वह लड़की अस्त-व्यस्त नग्न-सी पड़ी थी। वह व्यक्ति भी पास में पड़ा था, माना कि दोनों मुर्दा हों।

इस नग्नता की कब उसने सोची थी। नारी इतनी वेश्या होगी, उसे कुछ अन्दाज नहीं था। अभी-अभी, कुछ घंटे पहिले, उसका पति इस पतित नारी के पास ही रहा है। यह पुरुष क्या इसी तरह बसेरा ले लेते हैं। उनका कोई भी सिद्धान्त नहीं है। इनको जरा भी विवेक नहीं,

कहीं इनको हिचक नहीं। पात्र-कुपात्र, जो मिल गया, वहीं टिककर आश्रय ले लेंगे। उस नग्न नारी-शरीर पर उसे लोभ भी हो आया। एक और दियासलाई लगाकर उसने देखा, लड़की ने अँगड़ायी लेकर दूसरी करवट ले ली है। उसका वह शारीरिक प्रदर्शन बहुत भद्दा था। क्या वह किसी का लिहाज नहीं करती है। यह कैसी क्रिया है? तब वह भी तो अपराधिनी है, वह भी तो.......?

उस फैले अंधकार के बीच वह दोनों पुरुष-नारी सोये हुए हैं। उनको किसी की भी परवाह नहीं है। यह नारी अभी पति के पास थी और अब! है वह सुन्दर, इसमें सन्देह नहीं। पर यह कैसी सुन्दरता है, यह कैसा शरीर है? भारी घिन लगने लगी। तभी अपने से भी घिन होती गई अधिक वहाँ न ठहर ऊपर चली आई। पति चुपचाप सोये हुए थे। उनकी धीमी-धीमी साँस का स्वर सुनाई पड़ रहा था। चारों ओर सन्नाटा था।

वह पति के पास नहीं सोई, जैसे कि दोनों अपवित्र हैं। दोनों को एक दूसरे से कोई सामाजिक और शारीरिक रिश्ता नहीं रखना चाहिए। दोनों गलत हैं। पति ने ही उसे इतना नीच और कलुषित बनाया, उसने ही यह सारा वातावरण जोड़ा। वह कुछ नहीं जानती थी। यह व्यक्ति कितना निर्दयी था। अपने पुरुषार्थ का हवाला देकर पूछता था, "और कितने दोस्त तेरे हैं?"

"दोस्त!" बात दिल पर बार-बार, हथौड़े की-सी चोट करती लगी।

आगे भी जीवन में फिर वही-वही हाल रहा—पति का घर से बाहर रहना, शराब पीना, वहीं वेश्याओं का साथ। उसने खुशामदें की, मिन्नतें कीं, धमकी दी। कोई भी उस रोग की अचूक दवा नहीं निकली। वह हार गई। दिन बीतते गये। वह भी लापरवाह हो गई। पति

से ज्यादा बातें करनी छोड़ दीं। इस तरह वह जिन्दगी काट लेगी। अकेले आधी-आधी रात को वह चौंक उठती। लगता, कोई उसके अंगों को मरोड़े डाल रहा है। कभी-कभी गहरी-गहरी साँसें अनायास ही आने लगतीं। वह न समझ पाती कि क्या होगा। अँधेरे में सोना उसने छोड़ दिया। नींद फिर भी उसे नहीं आती थी। वह सुस्त पड़ने लगी। कभी-कभी सिर में दर्द होता। भीतरी अज्ञात शारीरिक पीड़ा से वह कराह उठती।

पति का वही मनमौजी व्यवहार चल रहा था। जब मन में आता, घर रहते, नहीं तो कई-कई दिनों तक बाहर ही पड़े रहना सीख गये थे। वह यदि कुछ कहती, जवाब मिलता, औरतों का यही काम है। पुरुष को तो बाहर लाख काम सँभालने को पड़े हुए हैं। वह निरुत्तर हो जाती। तकरार वह नहीं बढ़ाती थी। झगड़ा करना उसने छोड़ दिया था। रात को जब बहुत डर लगता, वह काँप उठती। नींद फिर न आती। फूट-फूटकर रोती, रोती रहती। पलँग की चादर भीग जाती। बड़ी देर तक रो, गहरी-गहरी सिसकियाँ भर आखिर थकी-हारी सो जाती। कभी कभी कमरे में टहलते-टहलते ही रात बिता देती।

तभी एक दिन पड़ोसियों का लड़का कॉलेज की छुट्टियाँ होने पर मुहल्ले में लौटकर आया। पति को उससे थोड़ी दिलचस्पी हो गई। वह भी उससे अनजाने परिचित हो गई। वह सीधा-साधा, कॉलेज में पढ़ता लड़का, उस घर की व्यवस्था कुछ भी नहीं समझ पाया। वह उससे बहुत कम बातें करती थी। आपस में, कभी-कभी, छोटा-मोटा मजाक भी चलता था। सिनेमा की तसवीरों को देख, वह कुछ रंगीन जरूर हो गया था, फिर भी यथार्थ बात उसकी समझ में नहीं आती थी। एक दिन वह बोली, "अब तो तुम्हारी शादी होनेवाली है!"

"क्या ?"

"जैसे तुम नहीं जानते हो !"

"कहाँ, किसने कहा ?"

"करोगे न, मेरी बात मानो !"

शादी—कौन होगी वह लड़की, क्या कहीं से कोई रिश्ता आया है। अचरज में उसने पूछा, "कहाँ मालूम हुआ है ?"

"तुम गाना सुनने नहीं जाते ?" शादी से बाद की बात उठाते हुए उसने कहा।

"कहाँ ?"

"तवायफों के घर।"

"तवायफों के घर ?" वह कुछ नहीं समझ पाया।

"जाया करो। वहाँ पूरी शिक्षा मिलती है।" कहते हुए वह उठी और दस का एक नोट लाकर देते बोली, "लो, यह वहाँ की फीस है। घर से मिलेगी नहीं, इसलिए दे रही हूँ।"

"दस रुपया !"

"वे तो इतने में ही लड़कियों को रात-रात भर के लिए घर ले आया करते हैं।"

"क्या ?"

"तुम जैसे नहीं जानते। जानते हो, वे क्या करते हैं ?"

वह स्तब्ध हो रहा। शब्द उसके कानों में उलझकर रह गये। वह फिर बोली, 'शायद कालेज में यह नहीं पढ़ाया जाता।"

"आप क्या कह रही हैं ?"

"अच्छा, मानो कि तुम लड़की होते। तुम्हारे पति आधी-आधी रात बाजारू लड़कियों को घर में लाते, तब तुम चुप बैठे रहते न ?"

"नहीं।"

"लेकिन मैं तो चुपचाप वह तमाशा देखा करती हूँ।"

"आप?"

"और क्या कर सकती हूँ। किससे कहाँ तक झगड़ा करूँ। फिर पति को छोड़कर भाग जाने का रिवाज भी अभी नहीं चला। आप क्या सोच रहे हैं?"

"कुछ नहीं।"

"क्यों नहीं—यही न कि मैं कितनी अभागिनी हूँ।"

"अभागिनी!"

"यदि तुम्हारे वश में होता, मुझे सुख से रखते, पूजा करते, मुझे ज़रा भी दुःख नहीं होता। रहम आ रहा होगा। अच्छा, तुम चुप क्यों हो? मन ही मन क्या कुछ गाँठ रहे हो?"

वह चुप रहा।

"सारा मुहल्ला मुझसे ईर्ष्या करता है। शायद तुम्हें मालूम नहीं, मैं कितनी भाग्यवान हूँ। आराम के साधन हैं, सुन्दर भी सब से अधिक हूँ। यदि वे जानतीं......"

"अरे, आप रो रही हैं?"

"रोना तो हमेशा ही है।"

"नहीं-नहीं, यह रोना क्यों। चुप रहिए, क्या हो गया है तुम्हें। मुझे मालूम नहीं था। आपने आज तक नहीं कहा।"

फिर भी आँसुओं से आँखें डबडबाई हुई थीं। वह समझाता बोला, "छी, क्या कोई इस तरह रोता भी है।"

वही आँसू। वह सन्न रह गया। वह कितनी दुःखी है। पति कितना नराधम है। उसे क्या ऐसी अच्छी बीवी मिलनी चाहिए।

वह साहसकर बोला, "इस तरह नहीं रोना चाहिए।"

आँसुओं से सिसकियों पर बात आ गई। उसने उस लड़के की गोदी में सिर रख दिया। कुछ देर बाद लीला हँसकर बोली, "तुम बड़े वैसे हो जी।" और मुस्करा उठी। आँसू अब सूख आये थे।

उस लड़के का चेहरा फक पड़ गया। वह उसे देखती रही। वह उलझन में था। उसकी समझ में अभी तक ठीक-ठीक बात नहीं आई थी। लीला ने कहा, "क्यों दुरुस्त हो।"

"नहीं तो।"

"अफसोस हो रहा होगा।"

"अफ़सोस !"

कितना सीधा लड़का है ! नारी की कोमलता को पहचानता है। कुछ पूछने पर किस तरह, सरलता से, आँखें ऊपर उठा, उसे देखता रह जाता है। वह अनजान है। वह उसे पूरी शिक्षा देगी। वह सब सही-सही सीख जावेगा। ज्यादा चिन्ता उसे अब नहीं करनी है। अच्छी तरह वह अब रहेगी। क्यों बेकार दुःख बटोरा करे। जितना मैल जमा होता जाता है, परेशानी बढ़ती जाती है। वह ऐसा नहीं करेगी।

दशहरे की छुट्टी बीत जाने पर वह चला गया। फिर उद्भ्रान्त हो उठी। रात-रात नींद नहीं आती थी। पति का वही पुराना व्यवहार जारी था। जरा भी रद्दोबदल नहीं हुआ। उसकी झुँझलाहट बढ़ने लगी। वह कुछ नहीं करना चाहती थी। किसी काम पर मन नहीं लगता था। दिन फिर भी कटते ही थे, और एक महीना भी कट गया। उसका मन खाली हो जा रहा था। एक भीतरी भूख बार-बार उमड़ उसके जीवन को खाये जा रही थी।

तभी एक धुँधली संध्या को पति एक शराबी दोस्त के साथ घर

आये। वह अजीब-सा आदमी था—पुलीस का दारोगा। मोछें मोम से ऊपर उठाई गई थी। अक्सर, सिर पर कई रेखाएँ पड़ जाती थीं। उसका तबादला नहीं होकर आया था। लीला उस आदमी की आँखें देख कर भयभीत हुई। उसने लीला को इस तरह घूरा, मानो वह एक सुन्दर रंगीन चिड़िया हो। बाज की तरह वह उसका अन्त कर देगा। वह काँप उठी। पति से कहना चाहती थी, ऐसे आदमियों को घर में नहीं लाना चाहिए। पर कह नहीं सकी, चुपचाप मन मारे बैठी रही।

अनाधिकार प्रवेशवाली सारी गुत्थियों को जैसे कि वह आदमी जानता था। लीला को भी पहचानने में उसे देर नहीं लगी। धीरे-धीरे पति की अनुपस्थिति में भी वह आने लगा। लीला को यह बुरा लगा। वह बार-बार मना करना चाहती, लेकिन कर न सकी। उसे इसका क्या अधिकार है। जब पति कुछ नहीं कहता वही क्यों बुरी बने।

कोई त्योहार था। लीला मन्दिर से पूजा करके आई थी। चुपचाप बैठी न जाने क्या सोच रही थी। तभी किसी ने बाहर से पुकारा, ठेकेदार साहब !"

वह नौकर से बोली, "देख तो, कौन है ?"

नौकर बाहर गया। देखा, दरोगा साहब हैं। वह बोले, "ठेकेदार कहाँ है ?"

"काम पर गये हैं।"

"जा, कैंची का एक पैकेट ले आ।" कह उसने पाँच रुपये का एक नोट नौकर के हाथ पर रख दिया। नौकर चुपचाप सिगरेट लेने चला गया। वह सावधानी से भीतर आया। लीला चौंक उठी। देखा कि वह उसे खा डालेगा। त्रस्त लीला ने चारों ओर देखा, बचाव कहीं नहीं था। वह अब क्या करे। यदि शोर करेगी, बदनामी का डर है।

भीतर दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। तभी वह बोला, "आज तो ख़ूब शृंगार करके बैठी हो!"

लीला चुप।

"मन्दिर गई थी?"

लीला फिर भी चुप।

वह पास सरककर बोला, "आप तो बोल ही नहीं रही हैं। क्या नाख़ुश हैं?"

लीला ने चुप ही रहना उचित समझा।

अपनी सारी झिझक हटा, लीला के उस नारी शरीर के कुछ अंगों पर भी वह अधिकार पा गया था। लीला ने मना नहीं किया। छुटकारे के लिए आँसू भी नहीं बहाए। वह कुछ न कहेगी, नहीं कहेगी।

वह चुप न रहा। आगे बढ़कर बोला, "ठेकेदार बेवक़ूफ़ आदमी है। वह चीज की क़दर करना नहीं जानता।"

लीला स्तब्ध रह गई। यही उसे उम्मीद भी थी। पर क्या हर एक पुरुष उससे यही माँगता रहेगा। पुरुष-ताकत के आगे वह सहम क्यों जाती है। मन्थर गति से कमरे में वह फिर टहलने लगी, टहलती रही। सब कुछ दुहरा-तिहराकर जानना चाहती थी कि बात क्या है। इस व्यक्ति से अभी भी उसे डर लग रहा था। उसने जो उसकी ख़ूनी-की-सी आँखें पहले पाई थीं, उसे लगा, उनमें बच्चोंवाला कुतूहल भी था। समझदार बन्दर की तरह हर पहलू से परख अच्छी तरह वह उसे पहचान लेना चाहता था। जैसे लीला एक गुड़िया है। उसे रंगीन कपड़ों में पा, उन कपड़ों को धज्जी-धज्जी उड़ा, कूड़े के ढेर पर उसे फेंक देने को जैसे वह तुला था। यही ठीक है। सारी शक्ति बटोर वह यही कहना चाहती थी, "मुझे काट डालो, मार डालो मैं, मैं अब अधिक दुनिया

में रहना नही चाहती !" पर नहीं, वह कुछ भी कहना नहीं चाहती, वह उससे कभी कुछ नहीं कहेगी। कहने की ज़रूरत भी नहीं। एक बार समर्पित शरीर अब उसके अधिकार में है, वह उसका अपना है, अपना ही रहेगा।

तीसरे दिन दुपहरी को वह बैठी थी। तभी एक ताँगा दरवाज़े पर आकर रुका। उससे कोई औरत सीढ़ी चढ़ ऊपर आई। लीला को देख अचरज में बोली, "आप कौन हैं।"

"मैं उसकी रिश्तेदार हूँ।"

"कब आईं?"

वह हाथ पर उसके पति की सोने की घड़ी लगाये हुए थी। लीला ने सब देखा, कहा कुछ नहीं। कुछ क्षण ठहर वह बोली, "ठेकेदार साहब कहाँ हैं।"

"बाहर गये हैं।"

"कब तक लौटकर आवेंगे?"

लीला के कानों के पास से यह प्रश्न तैरकर निकल गया। प्रश्न करने लायक अवस्था में अब उसने अपने को पाया। पूछा; "आप कौन हैं?"

"मैं?" वह हँस पड़ी, "ऐसे ही उनकी एक जान-पहचान वाली हूँ?" "तब आप उनकी बीबी हैं। मुझसे तो वे झूठ बोल रहे थे कि उनकी शादी नहीं हुई है।"

लीला चुप रही। इस घड़ी के बारे में जब उसने पति से पूछा था, तो उनका जवाब था, अनजाने कोई उसे चुरा ले गया है। कितना झूठ बोलते हैं! हिम्मतकर वह बोली, "मैं उनकी बीबी हूँ। आप यहाँ क्यों आई हैं!"

"इसमें गुस्से की बात क्या है, बीबी? मुझे क्या मालूम था कि

आप यहाँ होंगी। मैं तो इसी लिए बेखटके चली आई। यदि वे आवें, कह देना कि हसीना आई थी।"

"हसीना!"

"तब हसीना जान कहिएगा।"

"आप कैसे आई थीं?"

"वैसे ही। यहाँ शहर में एक काम था। सोचा कि उनसे भी मिलती चलूँ इसी लिए चली आई। आपको बड़ी तकलीफ़ पहुँची, मुआफ़ कीजिएगा।"

हसीना चली गई। लीला लुटी-सी बैठी ही रही। यह कैसा फ़रेब पति रचा करते हैं। उस शहर में इसीहसीना के लिए जाया करते हैं। यह औरत क्यों आई थी। पति को न पा, कितनी अचम्भित हो गई। पति से उसका दोस्ताना है, इस बात को फ़ख्र के साथ पत्नी के आगे कह, उसका उपहास करने में भी वह नहीं चूकी। कितनी-कितनी बातें वह सहा करे।

पति लौटे तो वह बोली, "आप कीमहारानी आपका घरबार बसाने के लिए आई थीं; मुझे देखकर हैरत में पड़ गई।"

"कौन महारानी?"

"वही, जिसकी कलाई पर आप सोने की घड़ी बाँध आये थे।"

"मैं?"

"हसीना जान आई थी। आपको घर में न पा, निराश हो, चली गई। मैं तो रोककर मुकाबला करवाना चाहती थी। वह डर के मारे भाग गई। आपकी हरकतों के मारे मैं तंग आ गई हूँ। यही है तो मुझे मायके भेज दो। वहाँ दो जून खाना मिल ही जावेगा। यहाँ भी तो पकी-पकी टुकड़े खाया करती हूँ। वहाँ चैन से रहूँगी। रोज का फजीता

मुझसे नहीं सहा जाता।"

सारी बातें हँसी में उड़ाते पति ने कहा, "आज सिनेमा नहीं चलोगी? बहुत अच्छी फिल्म आई है।"

"मैं नहीं जाऊँगी। आपको ही मुबारक हो। वह ठुनककर बोली।

"सब लोग तारीफ़ कर रहे हैं।"

"मैं नहीं चलूँगी, कह दिया।'

"तुम गुस्सा हो?"

"गुस्सा किससे होऊँगी। कोई अपना हो, तब न!"

"लीला!"

"चुप रहो जी। तुम सिनेमा चले जाना। मेरा सिर न जाने खाम्-खाह क्यों खाया करते हैं मुझे यह चोचले पसन्द नहीं हैं।"

यह कोई नई बात नहीं थी। पति से हमेशा ही ऐसी तकरार होती थी। पति उनका आदी हो गया था। साँझ को बाहर जाते पति बोला, "सिनेमा से देर में लौटूँगा। एक दोस्त के यहाँ दावत है। इन्तजार न करना।"

यह चुप रही। हुआ करे दावत। यह तो रोज ही होता है और होता रहेगा। इसमें अड़चन डालकर भी कुछ हासिल नहीं होगा। वह चुप रह गई। पति चले गये। अनमनी और खिन्न होकर वह तरकारी काटने लगी, काटती रही। आलू के छिलके बुरे भी लगते थे। कितने मैले होते हैं यह। उस पर भी जैसे वैसा ही बाहरी मैल फैल गया हैं। वह उस मैल के भीतर मैली होती जा रही है। एक दिन सड़ जावेगी। वह क्या आलू ही काटती रहेगी। अच्छा, यह बैंगन है। आलू-बैंगन का साग बनेगा। चटपटा वह बनावेगी। तबीयत खट्टा खाने को करती है। आम और नींबू का अचार घर में है ही। वह खाना खावेगी। वे बाहर

ही खाया करें, वह कब तक मन मारा करे। एक दिन की बात होती, सब्र कर लेती। अच्छा, दही भी मँगाया जावेगा, बिल्कुल खट्टा। खट्टी चीज अच्छी लगती है। बढ़िया परावठें बनावेगी। भूख नहीं है, क्या हुआ, वह तो लावेगी। खाना तो खाना ही है। भूखा कोई नहीं रहता। इस तरह भूखे रहकर काम भी नहीं चलने का। वह खाना बनावेगी। अभी तक नौकर ने मसाले नहीं पीसे। बाजार क्या गया, वहीं का हो रहा। वह भी घूमघाम करता रहेगा। ज़रा कुछ बहाना चाहिए, सारे बाज़ार का चक्कर लगेगा। कहाँ तक उसे समझावे। नौकरों का यही हाल है। बिना उनके गुज़ारा भी नहीं, और यह जो अँधियारा हो रहा है .

"आप सिनेमा नहीं गईं?" दरोग़ा साहब हाजिर थे।

वह फिर चुप। चाकू हाथ से छूट गया था।

"मैं भी सिनेमा जाता, आपको न पाकर लौट आया। ठेकेदार साहब तो मस्ती हैं, टिकट लेकर बैठ गये।"

अकेली जानकर तब यह आया है। यह क्यों आया है। वह खाना बनाती, खाती, पड़ रहती। वह आते, अच्छी बात है; नहीं आते, सो जाती। नींद कब तक नहीं आती, वह तो आती ही।

"मैं जानता हूँ, आज सिनेमा क्यों नहीं गई हैं?"

यह क्या जानता है। झूठ, वह कुछ भी मन में सोचकर नहीं रुकी थी। वह जरूर जाती, आपसी गुस्से की वजह से वह रह गई। खेल क्या वह नहीं देखना चाहती है! वह तो सिनेमा देखना पसन्द करती है। इस खेल को देखने की उसे बड़ी ख्वाहिश भी थी, लेकिन....

"नौकर भी आपका सिनेमा में दाखिल हो गया।"

"सिनेमा में?" हठात् सारे बदन में एक झुरझुरी दौड़ पड़ी। सब

तैयारी, ठीक-ठीककर यह आदमी आया है। सब कुछ समझनी है। वह क्या नहीं जानती है कि यह क्यों आया है।

"वह मुझसे बोला, "पास दिलवाओ।' मैंने उसे बैठा दिया। नौकर की जात ठहरी। उस भीड़ में खुशामद करने लगा। मैं तो कहने आया था, नौकर सिनेमा चला गया है।"

कहने आये थे! यह लोग कैसे हैं! सब कुछ ठीक ठीक जानकर भी, जाल बिछा, गोली फेंकेंगे। कसूर उसका नहीं है! वह कुछ नहीं जानती। उसकी सारी सामर्थ्य चूक क्यों रही है। यह क्या रोज़गार वह जीवन में ठान रही है। इसी के लिए सारी लड़ाई क्या पति से दिन को हुई थी।

मन में भीतर पति हट-हट की हलकी-हलकी आवाज़ लगाने लगे। ज़रा चौंकने के बाद पुरुष की धुक-धुकी में वह फिर खो गई। कुछ भी दिक्कत इसमें उसे मालूम नहीं पड़ी। वह शरीर और उनका उपयोग क्या सिर्फ यही था? इसी के लिए उसके पति क्या हसीना के पास जाया करते हैं। मन की बेकरारी के भीतर, पुरुष सरल पदार्थ बन, एक गुनगुनी मिठास फैला देता है। वह उस शरीर को छुटकारा दे देती है। यही पुरुष चाहता है। इसी के लिए फरेब, जोड़, दुनिया भर के बहाने वह बनाता रहेगा। वह खुद भी तो कुछ नहीं कहती है। उस शरीर का वह जो चाहे, करे। वह मना नहीं करेगी। वह उससे कुछ नहीं कहेगी।

हठात् वह उठा और बोला, 'मैं अब चलूंगा।"

"जाओगे?" वह बार-बार घड़ी की ओर देखता है? उसे वह, वश चले तो, वहीं बाँधकर रख ले। यह अस्थिरता—इसी का सारा दोष है। एक जगह जमकर बैठ नहीं सकते।

गहरी साँस ले वह बोला, "नौ बज गये !"

बजने दो, बजने दो । वह हमेशा देखती है, वह बजते ही रहते हैं। लेकिन उसकी बात कौन सुने । उठ खड़ा हुआ। वह भी सँभलकर खड़ी हो गई। वह चला ही गया, उसे जाते वह देखती रही।

उसे देखा, देखा। घर में वह अकेली रह गई। चिराग़ तक नहीं जला था। कमरे में घना अंधकार था। वह चौंक उठी। सँभलकर, कुछ देर, न जाने क्या क्या सोचती रही। लालटेन फिर जलाई। कमरे में रोशनी फैल गई। आँखें मीन-मीनकर वह अपने को आइने में देखती रही। वह वैसी थी, वैसी ही—खुद अपने को लीला कहकर पुकारने की इच्छा प्रबल हो उठी, पर पुकार न सकी। आइने के सामने उससे खड़े नहीं रहा गया। वहाँ से हट गई।

रसोई का कुछ भी इन्तजाम नहीं हुआ था। अब क्या होगा। रसोई नहीं बनेगी। मेज पर रेजगारी पड़ी है। कचौड़ियाँ आवेंगी। खाना बनाने की सामर्थ्य अब उसमें नहीं है वह कुर्सी पर धम् से बैठ गई।

कुछ देर बाद नौकर आया। तेज हो वह बोली, "कहाँ चला गया था रे ?"

वह चुप खड़ा रहा।

"बोलता क्यों नहीं !"

"सिनेमा, माँ जी !"

"बिना पूछे !"

"माँ जी, दरोगा साहब मिल गये थे। पास दिया था, ऐसा मौका .."

"क्यों, घर के मालिक हम हैं कि वे ?"

"माँ जी !"

"सुन, आगे ऐसा करेगा तो नौकरी नहीं रहेगी !" कह, पैसे फेंकती, वह बोली, "जा, कचौड़ी ले आ।"

नौकर चला गया। वह उदास बैठी रह गई। पति अभी क्यों आने लगे। न जाने कहाँ यार-दोस्तों के बीच होंगे। उसे ही इस तरह अकेले घर में पड़े रहना है।

यह सारा व्यवहार अधिक दिन तक नहीं चला। एक दिन लीला को पता चला, वह गर्भवती हो गई है। एक अज्ञात दिली खुशी से भीतर सन्तुष्टता भरती जा रही थी। वह अब माँ बनेगी। दरोगा साहब ने भी अब उसके यहाँ आना बन्द कर दिया था। वह खुद उनसे अब कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहती थी।

कई महीने कट गये। उसमें काफ़ी फ़र्क पड़ गया था। एक दिन मई की बड़ी सुबह सो रही थी। पति उठकर काम पर चले गये थे। किसी ने उसे जगाया। वह आँख मलती उठी। बोली, "तुम?"

"सो रही हो?"

"हाँ। कब आये? कल सुन तो रही थी कि तुम आनेवाले हो। सुबह की गाड़ी से आये हो न? इम्तहान कैसा दिया है?"

"अच्छा ही हुआ है। कच्ची शिक्षा थोड़े ही मिली थी!"

"चलो, तुम भी आ गये। यह ठीक ही हुआ। खड़े क्यों हो, बैठ जाओ।"

"बहुत सोती हो?"

"सुबह नींद तो आती ही है।"

"और......

"तुमको शायद मालूम नहीं मेरे बच्चा होने वाला है।"

"बच्चा?"

"क्यों, क्या मेरी माँ बनने की उम्र नहीं है!"

आठवें महीने वह माँ बनी। एकाएक पेट में दर्द शुरू हुआ। लेने के देने पड़ गये। आपरेशन कराया गया। ठेकेदार साहब के रुपए ने मदद दी। वह भी बच गई, बच्चा भी। खतरे को दूर रखने के लिए बच्चेदानी भी मिटा दी गई। काफ़ी परवाह के बाद वह अच्छी हो गई! पूरा एक साल सँभलने में लगा।

बच्चा बड़ा सुन्दर था। वह कभी हँसता था, कभी रोता। इस खिलौने को पाकर वह बहुत मगन रहा करती। उससे खेलती, चुटकी लेती, बातें करती। वह कुछ नहीं बोलता—मुँह फाड़े एकटक उसे देखा करता। गोदी में उसे फिर वह उठाती। खिलाना शुरू करती, "राजाबेटा है, बड़ा हुशियार है, बड़ा...!"

खूब बड़ा योग्य और बनाकर वह उसका मुँह चुमना शुरू करती। चुमते-चुमते उसके गाल मसल डालती, वह लाल हो उठते। बच्चा रोने लगता। थपकियाँ देकर फिर उसे सुला देती।

दरोग़ा साहब अब नहीं आते थे। उनसे उसका झगड़ा हो गया था। कालेज का लड़का भी अपनी नई दुलहिन को सँवारने लगा था। लीला ने उसकी दुलहिन को देखा था। देखकर बड़ा कौतुक उसे हुआ था। जी में आया कि उसे वहाँ से उठा लाये, अपने पास रखे, छोटे को खूब छकाए और फिर.......!

छोटे से एक दिन उसकी बातें हुई थीं। पूछा था उसने "दुलहिन कैसी लगी रे?"

"ठीक तो है...."

"लाज आती है, क्यों?" लीला ने उभारा देने का यत्न किया, पर दे न सकी। कहकर रह गई, "सँभालकर रखना उसे।"

कुछ दिन बाद उसे पता चला, छोटे दुलहिन को सँभालकर रख रहा है—थप्पड़ और घूँसों के ज़ोर से। वह कुछ न बोली। अपने कमरे में आ पलँग पर पड़ गई। अनायास तकिया भीग चला। बाद मे खुद उसे अपने पर आश्चर्य हुआ। मुँह धोया, चेतन होकर अपने कमरे में आई। बच्चे को गोद में लिया। खिलाना शुरू किया, "तू राजा बेटा है, बड़ा हुशियार है, बड़ा ......"

और फिर चूम चूम कर उसके गाल मरोड़ डाले। वह लाल हो उठे। पर बच्चा रोया नहीं, वह अब अभ्यस्त हो चला था।

बच्चे के बाद लीला स्वस्थ होती गई। वह खिलती जा रही थी। देखने में खूब सुन्दर लगती थी। आखो में एक अजब आकर्षण आ गया था। अनायास ही अपनी ओर वह खींच लेती थी। निकट पहुँचते डर लगता था। देखने की तबीयत करती, देखने पर डर लगता। सुफ़ेद धरती पर काली-काली डिबलियाँ—इतने आकर्षण को लेकर भी उसकी आँखें खाली खाली लगती थीं। जैसे दुनिया से उन्हें कोई सरोकार नहीं, सब कुछ टण्टा-बखेड़ा-सा लगता है। बच्चा है, घर है, पति है, सब कुछ भरा-पूरा है—लेकिन फिर भी जैसे कुछ नहीं, कुछ नहीं।

दिन और महीने कटते चले गये। पिछली स्मृतियाँ जीवन में रल गई थीं। उन्हें टटोलना उसने छोड़ दिया था। पति का रवैया भी नहीं बदला था। लेकिन इस ओर से भी वह निश्चिन्त हो गई थी। सारा गुस्सा जैसे निपट चुका था। शरीर पर एक अपना अधिकार होता जा रहा था। नया अनुभव उसे यह लगा। उसे सँभालने में वह लगी। और फिर बच्चा तो था ही ....

जाड़े आ रहे थे। बच्चे के लिए पुलओवर वह बुन रही थी। बाहर एक लड़की टोकरी लिए बैठी हुई थी। एकाएक छोटे आया।

उसे देखकर कुछ झिझका। लीला ने उलझन हटाई, "रुक क्यों गये, आओ, अभी तक तुम........!"

वह चुप रहा। लीला ने कहा, "बहुत दिन बाद दिखाई पड़े?"

"इधर तबीयत ठीक नहीं थी।"

"क्यों, दुलहिन यहाँ नहीं है क्या?"

"है भी और नहीं भी। लेकिन एस्पिरीन की टेबलेट वह थोड़े ही है जो।"

"ओह?" लीला ने कहा, "तो एस्पिरीन की टेबलेट चाहिए। इसे देखते हो?"

छोटे की आँखें उस लड़की की ओर फिरीं। घूँघट के स्थान पर टोकरी की शरण लेने का प्रयत्न वह कर रही थी।

"इससे कारगर टेबलेट नहीं मिलेगी," लीला ने कहा, "ठेकेदार साहब का सारा शोकताप इसने हरा है।"

"ठेकेदार साहब का...पर यह यहाँ क्यों आई है?"

"मुझसे भी उस उपकार के बदले में इनाम चाहती है।"

"इनाम?"

"आश्चर्य हो रहा है? क्यों री, क्या चाहिए?"

"कुछ कर्ज दे दो बहूजी, माँ बीमार है।"

"उनसे ले लेती?"

"उन्होंने ही तुम्हारे पास भेजा है।"

"काम पर गई थी?"

"हाँ, छुट्टी माँगकर आई हूँ।"

"बिना जान-पहचान के मैं कैसे कर्ज़ा दे दूँ?"

कुछ देर ठहर लीला ने पूछा, "कितना चाहिए?"

"पाँच !"

"क्या करेगी इतने का ?"

"वह चुप रही। कुछ बोली नहीं।

लीला ने पूछा, "छोटे साहब के पास गई थी ?"

"गई थी, लेकिन ..."

"क्या हुआ री ?"

"वे घर पर नहीं हैं।"

"तू बड़ी बेशरम है। अच्छा, यदि यह बाबू जमानत ले लें तो मैं कर्जा दे दूँगी।

"मैं ?" छोटे अचकचाया।

"क्यों, क्या बुरी है जमानत दे दो न ?"

"बाबूजी !" छोटे के पाँव उसने पकड़ लिये।

लीला ने पाँच रुपये निकालकर उसे दे दिये। वह चली गई। लीला फिर छोटे से बोली, "सच ही बेचारी की माँ बीमार है। दया आती है। लेकिन कितना रुपया दिया जाये। बहुत रुपया मेरा इन लोगों में फैल गया है। वसूल कभी होगा नहीं....।"

"तो न दिया करो।"

"मैं ठहरी औरत जात। जल्दी पिघल जाती हूँ।"

छोटे चला गया, बिना एस्पिरीन की टेबलेट लिए। जरूरी काम की याद उसे आ गई थी।

लीला अपने कमरे में आई। एकटक, रिक्त आँखों से, बच्चे की ओर देखती रही। मीठी नींद में वह मुस्करा रहा था।